हमारे प्रेरणा स्त्रोत

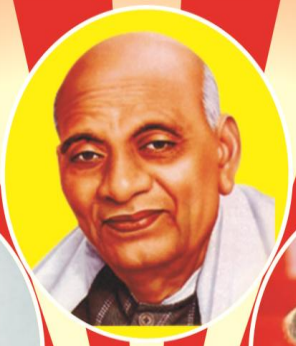

राजकुमार यादव 'सरस'

अन्तरा-शब्दशक्ति प्रकाशन

हमारे प्रेरणा स्त्रोत

राजकुमार यादव 'सरस'

अन्तरा शब्दशक्ति प्रकाशन
वारासिवनी, मध्यप्रदेश

ISBN - " 978-93-5372-081-0"

अन्तरा-शब्दशक्ति प्रकाशन

संपादक- प्रीति समकित सुराना

तकनीकी संपादक एवं आवरण चित्र- संदीप कुमार सोनी, वारासिवनी

मुख्य कार्यालय - १५ नेहरू चौक, वारासिवनी, जिला बालाघाट (म.प्र.) ४८१३३१

दूरभाष- (कार्या.) ०७६३३-२५३१५६

मोबाईल- ६४२४७६५२५६

अणुडाक -Antrashabdshakti@gmail.com

अंतरताना - www.antrashabdshakti.com

प्रथम संस्करण - २०१६, **राजकुमार यादव**

मूल्य - १२०.०० रूपये

मूद्रक- **शैलू कम्प्यूटर्स, वारासिवनी**

HAMARE PRERNA STROTE BY RAJKUMAR YADAV 'SARAS'

वैधानिक चेतावनीः- इस पुस्तक का सर्वाधिकार सुरक्षित है। लेखक की लिखित अनुमति के बिना इसके किसी भी अंश को फोटोकॉपी एवं रिकार्डिंग सहित इलेक्ट्रोनिक अथवा मशीनी किसी भी माध्यम में अथवा संग्रहण और पुनर्प्रयोग की प्रणाली द्वारा किसी भी रूप में पुनरूत्पादित अथवा संचारित प्रसारित नहीं किया जा सकता है। प्रस्तुत पुस्तक की समस्त रचनाएँ लेखक द्वारा अन्तरा-शब्दशक्ति प्रकाशन को प्रेषित की गई है। अतः प्रत्येक रचना की मौलिकता के किसी भी दावे हेतु लेखक जिम्मेदार है। प्रस्तुत पुस्तक के घटनाक्रम पात्र, भाषाशैली एवं स्थान सभी लेखक की कल्पना है। किसी भी प्रकार के वाद-विवाद के लिए प्रकाशक का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

समर्पण

परम पूज्यनीय ममतामयी माता जी

स्व.श्रीमती छोटीबाई रामप्रसाद यादव

की पावन स्मृति में

सादर समर्पित

जिन्होंने मुझे पग-पग पर

प्यार दुलार के साथ ही साथ निरंतर आगे बढ़ते रहने

की प्रेरणा देती रहीं।।

अनुक्रमणिका

क्र.	विषय	पृष्ठ
1.	अपनी बात	6-8
2.	मेवाड़ की मर्यादा, महाराणा प्रताप	9-15
3.	समाज सुधारक गुरु नानक देव	16-19
4.	कुशल प्रशासक छत्रपति शिवाजी महाराज	20-23
5.	आधुनिक भारत के जनक राजा राममोहन राय	24-29
6.	स्वामी दयानंद सरस्वती	30-33
7.	झांसी की रानी लक्ष्मीबाई	34-39
8.	क्रांति ज्योति सावित्रीबाई फुले	40-43
9.	बहुमुखी प्रतिभा के धनी लोकमान्य तिलक	44-48
10.	युवा युगपुरूष स्वामी विवेकानंद	49-52
11.	राष्ट्रपिता महात्मा गांधी एवं शिक्षा	53-56
12.	महात्मा गांधी जी के अहिंसा नीति की प्रासंगिकता	57-60
13.	एकता और अखण्डता के अग्रदूत सरदार वल्लभभाई पटेल	61-64
14.	कलम के सिपाही मुंशी प्रेमचंद	65-68
15.	डॉक्टर सर्वपल्ली राधाकृष्णन	69-71
16.	बच्चों के प्यारे चाचा नेहरू	72-74
17.	दलितों के मसीहा डॉ. बाबासाहेब आम्बेडकर	75-77
18.	महान स्वतंत्रता सेनानी नेताजी सुभाष चंद्र बोस	78-81
19.	सादगी एवं ईमानदारी की प्रतिमूर्ति लाल बहादुर शास्त्री	82-85
20.	क्रांतिकारी भगतसिंह	86-89
21.	डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम	90-92
22.	कल्पना चावला	93-96

अपनी बात

मुंबा देवी की पवित्र भूमि मुंबई, छत्रपति शिवाजी महाराज जैसे वीर योद्धाओं के शौर्य की गौरवशाली गाथा कहनेवाली पवित्र मिट्टी महाराष्ट्र में सम्मान दृष्टिभोगी श्री रामलखन यादव एवं श्रीमती छोटी बाई यादव का प्रथम पुत्र होने का गौरव मुझ अकिंचन को जब मिला संभवतः तभी से लोग मेरी ममतामई माता जी और परोपकारी धर्म परायण पिताजी की संतान होने के कारण मुझसे कुछ विशेष उकेरने अथवा कुछ श्रेष्ठ करने की अपेक्षा कर बैठे थे। माताजी की अभिलाषा, पढ़ाने की चाहत ने मुझे एक वर्ष पहले ही बड़ा दिखाकर बृहन्मुंबई महानगरपालिका विद्यालय की पहली कक्षा में प्रवेश दिलवा दिया। दो वर्ष पढ़ने के उपरांत प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक की शिक्षा आई. डी. यू. बी.एस. विद्यालय भांडुप मुंबई में प्राप्त की। विद्यालय घर से दूर होने के बावजूद माता जी मुझे अपने कंधों पर बस्ता लेकर पहुंचाती और लेकर ही नहीं आती बल्कि विद्यालय छूटने तक वहीं बैठी रहती थीं। उनकी प्रेरणा, पिताजी का प्रयास, शिक्षकों के मार्गदर्शन ने मुझे शिक्षा देने का पवित्र कार्य करने योग्य शिक्षक बनाया। जिसके परिणाम स्वरूप प्रतिदिन माता जी से यही कह कर निकलता, 'अम्मा, मैं विद्यालय जा रहा हूं।'

भारतीय संस्कार विद्यालय मानपाड़ा में पांच वर्ष अध्यापन कार्य करने के उपरांत मुझे ठाणे महानगरपालिका में सेवा करने का शुभ अवसर प्राप्त हुआ। जहां मुझे अपनी योग्यता एवं माता-पिता द्वारा दिए गए संस्कारों एवं शिक्षकों द्वारा दिए गए ज्ञान का समुचित उपयोग करने के लिए खुला आकाश मिला। जहां शिक्षकों को प्रशिक्षण देने एवं छात्रों की प्रगति के लिए निरंतर अध्ययन शीलता एवं साहित्यिक पंख लगाकर जीवन की उड़ान भरने लगा। जहां मैं जन्मभूमि मुंबई, कर्मभूमि ठाणे एवं

संस्कार भूमि सुल्तानपुर उत्तर प्रदेश, का ऋण चुकाने का प्रयत्न करता रहा हूं। ठाणे मनपा द्वारा आयोजित निबंध एवं भाषण प्रतियोगिता में कई वर्षों तक लगातार मुझे विशेष स्थान प्राप्त होता रहा।जिसके परिणाम स्वरूप सुमन मोटल्स, एलर्ट इंडिया आदि संस्थाओं द्वारा आयोजित निबंध प्रतियोगिता में प्रथम क्रमांक प्राप्त हुआ। जब मुंबई की प्रतिष्ठित समन्वय-संकल्प के प्रबंधक एवं ट्रस्टी श्री अनिरुद्ध पाण्डेय द्वारा मुंबई के शिक्षकों के लिए आयोजित निबंध प्रतियोगिता में 'प्रथम क्रमांक' का पुरस्कार बृहन्मुंबई महानगरपालिका शाला के अधीक्षक डॉ.रहमान अंसारी तथा शुभदा पारकर मैडम के कर कमलों द्वारा प्रदान किया गया। वह क्षण मेरे लिए एवं ठाणे मनपा के लिए गौरवशाली क्षण था। साथ ही साथ मुझे शैक्षणिक, साहित्यिक एवं सामाजिक क्षेत्र में मार्गदर्शन करने हेतु संस्था के ट्रस्टी आदरणीय पाण्डेय जी मिल गए। जिनका आशीष एवं मार्गदर्शन सदैव मुझे मिलता रहा। जिसके कारण साहित्य की ओर मेरी रूचि दिन प्रतिदिन बढ़ती रही।

विद्यालय में महान पुरुषों की जयंती एवं पुण्यतिथि तथा अन्य शैक्षणिक कार्यक्रमों का आयोजन करके छात्रों को उपयुक्त जानकारी व्यक्त करने का शुभ अवसर मुझे सदा मुख्याध्यापक एवं सहयोगी शिक्षक-शिक्षिकाओं द्वारा मिलता रहा एवं विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में मेरे लेख प्रकाशित होते रहे।

महान पुरुषों के संदर्भ में जितना लिखा जाए उतना कम है। फिर भी मैं चंद पंक्तियों में ''प्रेरणा के स्रोत'' पुस्तक में कुछ चुनिंदा महान पुरुषों की झलक देने का प्रयास किया हूं, जो विद्यार्थियों, शिक्षकों एवं संज्ञान पाठकों के लिए प्रेरणादायक सिद्ध हो सकती है। इन महान पुरुषों से हमें जीवन में जीने की प्रेरणा मिलती है। हम उनके बताए पथ पर चलकर अपने जीवन को सार्थक बना सकते हैं। मनुष्य के जीवन में उतार-चढ़ाव आते-जाते रहते हैं। कभी सफलता तो कभी असफलता का मुंह

देखना पड़ता है। ऐसे में महान पुरुषों की जीवनी हमें सतत प्रेरणा देती रहेगी और मनोबल को बढ़ाने का प्रयास करेगी। पुस्तक को सरल एवं रोचक भाषा में लिखने का प्रयास किया गया है।

अपनी व्यस्तता के कारण मुझे समय बहुत कम था और मेरे अकेले के लिए पुस्तक को समय दे पाना असंभव सा लग रहा था। लेकिन मेरी धर्मपत्नी सुमन यादव का आत्मीय सहयोग मिला। साथ ही साथ बड़े पुत्र राधेश्याम यादव, पुत्रवधू प्राचार्या पूजा यादव, छोटे पुत्र कैलाश यादव, भाई कृष्ण कुमार यादव, जयप्रकाश यादव, बहन चंदा यादव, की निस्सीम आत्मीयता रही जिसके कारण पुस्तक पूर्ण करने में सरलता हुई।

मेरे शुभचिंतक ठाणे मनपा शिक्षण उपायुक्त श्री मनीष जोशी, शिक्षणाधिकारी श्री राजेश कंकाल, गटाधिकारी सौ.संगीता बामणे, श्री अनिरुद्ध पाण्डेय, इंद्रजीत पुस्तकालय सीताराम ग्रामीण साहित्य परिषद जौनपुर उत्तरप्रदेश के संस्थापक श्री विनोद कुमार सीताराम दुबे, विक्रमशिला हिंदी विद्यापीठ के कुलाधिपति संत सुमन भाई (उज्जैन), अधिष्ठाता डॉ अरूण शर्मा, उपकुलपति डॉ संभाजी बाविस्कर, उपकुलसचिव डॉ प्रेमचंद पांडे(बिहार), महाराष्ट्र उपाध्यक्ष डॉ संजय बर्वे, बड़े भाई श्री राज सिंह यादव, श्री रामचेत यादव, वरिष्ठ शिक्षिका सावित्री यादव द्वारा मुझे पुस्तक लिखने की प्रेरणा मिली। मैं हृदय से उनका आभार प्रकट करता हूं।

अत्यंत कम समय में पुस्तक को पूर्ण आत्मीयता के साथ प्रकाशित करने हेतु प्रकाशक एवं उनके सभी सहयोगीयों का तथा जिन्होंने इस पुस्तक के लिए शुभकामनाएं एवं आशीर्वाद प्रदान किए उनका मैं अत्यंत आभारी हूं एवं आभारी रहूंगा।

मेरी छोटी सी साहित्यिक यात्रा में मुझे तमाम आदरणीय मित्रों का स्नेहिल मार्गदर्शन, आशीर्वाद प्राप्त होता रहा, उन सभी के प्रति मेरे अंतस में अत्यंत आदर भाव है। जिनमें सर्वश्री

रामकुमार पाल, साहित्य प्रेमी मुंबई महाराष्ट्र, ओपन आई न्यूज के संस्थापक रमेश शर्मा भोपाल मध्यप्रदेश, मुस्कान के संपादक श्री लालबहादुर यादव, वरिष्ठ साहित्यकार दीनदयाल मुरारका मुंबई, प्राचार्य डॉ. रमाकांत तिवारी मुंबई, युवा समूह के संपादक श्री ओमप्रकाश अग्रवाल वर्धा, राष्ट्रीय शिक्षक संघ के अध्यक्ष श्री प्रभू चौधरी उज्जैन, श्री शोमनाथ शुक्ला सुल्तानपुर उत्तरप्रदेश, यू एस पत्रिका के संपादक श्री उमाशंकर मिश्र गाजियाबाद, बहन मंजू यादव साहित्यकार एवं लेखिका सोनागाछी एटा उत्तरप्रदेश, श्रीकांत दुबे, मुकुंद टाइम्स के संपादक श्री आर.एन.शर्मा लखनऊ, मुंबई राष्ट्र भाषा के प्रचारक श्री बृजेश तिवारी, मंथन के संपादक श्री महेश अग्रवाल, आकोला के साहित्यकार एवं संपादक श्री राजकुमार जैन 'राजन', मेरे स्वास्थ्य का ध्यान रखने वाले डॉ. श्री विजय यादव, डॉ. बाबूलाल सिंह, डॉ. आर.एम. पाल, मुख्या. विनोद पासी, शिक्षाविद् श्री चंद्रवीर बंसीधर यादव, श्री अनिल चतुर्वेदी ज्योतिषाचार्य मुंबई, ठाणे मनपा के मुख्य श्री दयाशंकर पांडे, सौ.शशीकला सोनजे, श्रीमती मालती यादव, श्रीमती विजया यादव, श्री संतोष जैसवार का हृदय से आभारी हूं, और भी सारे मित्र हैं जिनका इतनी शीघ्रता से स्मरण नहीं हो रहा है। उन सभी मित्रों से क्षमा प्रार्थी हूं। उनका भी सादर आभार और अंत में मेरी छोटी सी साहित्यिक यात्रा के लिए मां शारदे को नमन करते हुए अपने माता-पिता एवं प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से सम्मिलित सभी सहयोगियों को कोटि-कोटि आभार।

यह पुस्तक कितना सफल हो पाएगी इसका निर्णय आप सब ही कर सकते हैं सधन्यवाद एवं आभार।

आपका अपना

राजकुमार रामलखन यादव

मेवाड़ की मर्यादा, महाराणा प्रताप

''जो भरा नहीं है भावों से, बहती जिसमें रसधार नहीं।
वह हृदय नहीं वह पत्थर है, जिसमें स्वदेश का प्यार नहीं है।।''

भारत वर्ष वीरों की भूमि रही है। इस जगत में स्वयं से तो सभी प्यार करते हैं। यह मानवीय स्वभाव है किंतु जो परोपकार, के त्याग, राष्ट्रीय मान-सम्मान के लिए अपने जीवन की कुर्बानी देने से पीछे नहीं हटते उन्हें 'श्रेष्ठ मानव' कहते हैं। जिस देश की मिट्टी में मानव पलकर बड़ा हुआ जिसकी वायु में उसने प्रथम सॉस ली जिसके जल और अन्न से शरीर का विकास हुआ, जिसकी सभ्यता एवं संस्कृति से उसका मस्तिष्क विकसित हुआ और जिससे जीवन निर्वाह का सहारा प्राप्त किया, क्या उस देश के प्रति, मातृभूमि के प्रति, उसका कर्तव्य नहीं? आवश्यक है, थी और रहेगी। देश प्रेम की यह अमर दीपशिखा पर पतंगों की भांति देश प्रेमियों को जीवन अर्पित करना सिखा देती है।

भारत माता पर जब-जब संकट आए तब-तब माताओं ने अपने बेटे, बहनों ने अपने भाई, सुहागिनों ने अपने सुहाग को

भारतमाता की बलिवेदी पर समर्पित करने में पीछे नहीं हटी। देश प्रेम की इसी भावना के कारण सरदार भगतसिंह हँसते-हँसते फांसी पर चढ़ गए, चंद्रशेखर आजाद अपनी छाती पर गोलियां सह सके, वीर सावरकर को निर्वासन दंड सहन करना पड़ा इतना ही नहीं पंजाब केसरी लाला लाजपतराय पर पड़ने वाले डंडों को कैसे भूला जा सकता है। सुभाषचंद्र बोस, सरदार पटेल, लोकमान्य तिलक की कुर्बानियां देश-प्रेम की अमिट छाप को जागृत कर देतीं हैं। कारगिल युद्ध में हुए शहीदों की अमिट छाप अभी भी भारत वासियों के दिलों पर बनी है। यह भारत का इतिहास रहा है जो हमें प्रेरणा देती रहती है। जिसमें महाराणा प्रताप जैसे वीर योद्धा, देशप्रेम की खातिर वन-वन भटकते हुए भी शत्रुओं से लोहा लेते रहे। जिनका इतिहास में अद्वितीय स्थान रहा है। मेवाडाधिपति महाराणा प्रताप, स्वाभिमानी राजपूत शासक एवं महान देशभक्त थे जिनकी गाथा सुनकर आज भी मेवाड़ का बच्चा ही नहीं संपूर्ण भारत में देश प्रेमियों का सीना फूल उठता है। इनका ९ मई १५४० को उदमपुर मेवाड़ में हुआ। महाराणा प्रताप संग्रामसिंह के पोते और महाराणा उदयसिंह के ज्येष्ठ पुत्र थे। यह किसको मालूम था कि यही बालक बड़ा होकर केवल अपनी जन्मभूमि मेवाड़ में ही नहीं सारे भारतवर्ष में अपना नाम अमर कर जाएगा।

महाराणा उदयसिंह ने एक से अधिक विवाह किए थे उनके तेईस बेटे थे पर उनसे सबसे ज्येष्ठ एवं योग्य प्रातप ही था। ''होनहार विरवान के होत चिकने पात'' वाली कहावत प्रताप पर ठीक प्रतीत होती थी, परंतु महाराणा उदयसिंह अपना उत्तराधिकारी प्रताप को नहीं बल्कि छोटी रानी के विलासी और कायर प्रवृत्ति वाले छोटे पुत्र जगमल या यज्ञमल को बनाना चाहते थे जो कि कुल रीति के अनुकूल नहीं थी, इसलिए बड़े-बड़े सरदारों ने मिलकर प्रताप का ही राजतिलक करना चाहा पर प्रताप ने राज्य लेने से इनकार किया और कहा मैं पिताजी की

अंतिम इच्छा में बाधा नहीं डाल सकता पर मेवाड़ के प्रमुख सरदारों को छोटी रानी के कायर पुत्र को राजसिंहासन पर बैठाना गले से नीचे नहीं उतर रहा था। वे त्याग बलिदान और वीरता के साथ-साथ महान मानवीय गुणों वाले प्रताप को ही मेवाड़ के राजसिंहासन पर बैठाना चाहते थे। अतः एक दिन उन्होंने ठीक उस समय जब यज्ञमल राज दरबार में बैठकर नृत्य, गायन देखने-सुनने में मग्न थे, प्रमुख सरदारों ने पहुँचकर उन्हें मेवाड़ के राज्य शासन से उतारकर तत्काल प्रताप का महाराणा के पद पर राज्याभिषेक कर दिया। मेवाड़ के कांटो भरे ताज को स्वीकार करने के तत्काल बाद महाराणा प्रताप ने भरी सभा में घोषणा करते हुए कहा, ''मेरे वीर राजपूतों आज हम देखते है कि हमारी पुण्य जन्मभूमि मेवाड़ पर यवनों का राज्य है। यह वही मेवाड़ है जिसे बचाने के लिए हमारे पूर्वज हंसते-हंसते जान पर खेल जाते थें हमारी स्त्रियां हंसते-हंसते आग में जलकर प्राण न्यौछावर कर देती थी तो क्या आज हममें इतना साहस भी नहीं कि हम इसे फिर से आजाद करा सकें? आज मैं सब लोगों के सामने प्रतिज्ञा करता हूं कि जब तक चित्तौड़ के किले पर राजपूतों का झंडा फहरा न दूं तब तक चैन की सांस नहीं लूंगा। मै चित्तौड़ को जीते बिना सोने-चांदी के बर्तनों में भोजन करने की जगह पत्तलों पर भोजन करूंगा, मखमली बिस्तरों पर सोने के बदले जमीन पर सोऊंगा, महलों की जगह झोपड़ी में रहूंगा और तब तक अपनी दाढ़ी के बाल भी नहीं कटवाउंगा। बहादुरों! क्या आप मेरे प्रण को पूरा करने में सहायता देंगे?'' तब सब सरदारों ने बड़े जोश से कहा 'हम सब में जब तक खून की एक बूंद भी रहेगी तब तक हम चित्तौड़ के लिए लडेंगे।'

महाराणा प्रताप के मुख्य शत्रु अकबर थे। उनके पास लाखों सैनिक थे और प्रताप के सगे भाई शक्ति सिंह और जगमल भी मुसलमानों से मिल चुके थे। फिर भी महाराणा साहसी पुरूष थे, उन्हें इस बात की बिल्कुल चिंता नहीं थी कि उनके

पास सैनिक कम हैं। महाराणा प्रताप उदयपुर में रहते थे पर वे अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार उदयपुर के महलों को छोड़कर कुटिया बनाकर निवास करने लगे। प्रताप ने सोचा कि उनकी प्रजा पर मुसलमान आक्रमण कर सकते हैं इसलिए सारी प्रजा को घोषण कर दी कि प्रत्येक आदमी उदयपुर छोड़कर कोमल नीर घाटी चला जाए। परन्तु एक बूढ़ा खड़ा होकर कहने लगा प्रताप शूरवीर और साहसी है पर मुसलमानों के आक्रमण से डरते हैं वह नहीं गया। यह सुनकर आज्ञा न मानने के अपराध में महाराणा प्रताप ने उसे फांसी की सजा सुना दी तथा उसके दामाद को कैद कर लिया। अब बूढ़े के लड़के शीरा को पता चला तब उसने कसम खाई कि मैं अपने पिताजी का बदला जब तक नहीं ले लेता तथा बहन के पति को कैद से छुडा नहीं लेता तब तक चैन की नींद नहीं सोऊंगा। शीरा की बहन भानुमति को जब भाई की प्रतिज्ञा का पता चता तो वह उसे समझाने लगी। भाई, तुम जानते हो कि देश को प्रताप की कितनी जरूरत है? वह एक चमकता हीरा है वे राजपुतों कि शान हैं। क्या हुआ अगर उन्होंने हमारे पिता को मार डाला। आखिर हमारा राजा है। बहन के समझाने का कोई असर नहीं हुआ। वह मारने के लिए चल दिया यह सुनकर भानुमति भी घोड़े पर सवार होकर प्रताप को सूचना देने के लिए चल पड़ी। भरे दरबार में उसने अपने भाई की प्रतिज्ञा बताई और कहा मै अपने पति की मृत्यु स्वीकार कर सकती हूँ पर आपकी नहीं। मेरे पति को मारे जाने से केवल एक राजपूत कम होगा पर आपके मारे जाने से राजपूत जाति की मृत्यु है। यह सुनकर प्रताप भानुमति के देशप्रेम से प्रभावित होकर उसके पति को छोड़ दिया तथा सैनिकों द्वारा पकड़े उसके भाई को भी क्षमा कर दिया। महाराणा प्रताप अपने साथियों के साथ कोमल-नीर दुर्ग में थे। उन्हीं दिनों प्रताप के दरबार में एक बड़ा प्रसिद्ध भाट आया उसका नाम शीतल था। उसने प्रताप की प्रशंसा में एक बड़ी सुंदर कविता सुनाई। प्रताप सिंह ने प्रसन्न होकर उसे अपनी

पगड़ी इनाम में दे दी। घूमता फिरता शीतल भाट अकबर के दरबार में जा पहुंचा। दरबार के नियम के अनुसार उसने झुककर अकबर को नमस्कार किया परन्तु एक हाथ से उसने अपनी पगड़ी उतारकर पकड़ ली अकबर ने उसकी इस चेस्टा को देखकर ऐसा करने का कारण पूँछा।

शीतल भाट बोले, महाराज मैंने पगड़ी इसलिए उतार ली क्योंकि यह पगड़ी महाराणा प्रताप ने मुझको दी है। जिसका सिर आज तक शिवाय ईश्वर के किसी और के आगे नहीं झुका। यह पगड़ी उस वंश की है, जो सारे भारतवर्ष में आत्म अभिमान के लिए प्रसिद्ध है।

अकबर और सभी दरबारी इस बात को सुनकर हैरान रह गए। राजा मानसिंह भी वहीं था। उसने सोचा कि इस बार जब मेवाड़ के रास्ते से गुजरूँगा तो प्रताप से जरूर मिलूंगा। वह वहां गया। प्रताप ने उसका स्वागत किया लेकिन उसके साथ खाना नहीं खाया। इसे देकर मानसिंह को अपना अपमान महसूस हुआ।

मानसिंह दिल्ली पहुंचकर अकबर को अपने अपमान का सारा हाल सुनाया।अकबर ने प्रताप पर चढ़ाई कर दी ।प्रताप भी चौकन्ना थे। अकबर ने अधीनता स्वीकार करने के लिए मानसिंह को भेजा था। परंतु स्वाभिमान व स्वदेश के प्रति समर्पित इस योद्धा ने उनका प्रस्ताव ठुकरा दिया। जिसके फलस्वरूप १५७६ में हल्दीघाटी के मैंदान में अकबर की विशाल सेना मानसिंह और शहजादा सलीम की देखरेख में महाराणा प्रताप से युद्ध हुआ। इस घमासान युद्ध के बाद अपने प्रमुख सरदारों के परामर्श से घायल हुए महाराणा प्रताप रणक्षेत्र से भागकर अपने प्राण बचाए, ताकि स्वतंत्रता संघर्ष आगे भी जारी रखा जा सके। इसमें उनके प्रिय घोड़े चेतक ने अहम भूमिका अदा की। हल्दीघाटी के युद्ध में बिना किसी सहायक के प्रताप अपने पराक्रमी चेतक पर सवार हो पहाड़ की ओर चल पड़े। उनके पीछे दो मुगल सैनिक लगे हुए

थे, परंतु चेतक ने प्रताप को बचा लिया। रास्ते में एक पहाड़ी नाला बह रहा था। घायल चेतक फुर्ती से उसे लांघ गया पर अब उसकी गति धीरे-धीरे कम होती गई और पीछे से मुगलों के घोड़ों की टापें भी सुनाई पड़ी। उसी समय प्रताप को अपनी मातृभाषा में आवाज सुनाई पड़ी, ''हो नीला घोड़ा रा असवार।'' प्रताप ने पीछे मुड़कर देखा तो उसे एक ही अश्वारोही दिखाई पड़ा और वह था उसका भाई शक्ति सिंह। प्रताप के साथ व्यक्तिगत विरोध ने उसे देशद्रोही बनाकर अकबर का सेवक बना दिया था और युद्ध स्थल पर वह मुगल पक्ष की तरफ से लड़ रहा था। जब उसने नीले घोड़े को बिना किसी सेवक के पहाड़ की तरफ जाते हुए देखा तो वह भी चुपचाप उसके पीछे चल पड़ा, परंतु केवल दोनों को यमलोक पहुंचाने के लिए। जीवन में पहली बार दोनों भाई प्रेम के साथ गले मिले। इस बीच चेतक जमीन पर गिर पड़ा और जब उसकी काठी को खोलकर अपने भाई द्वारा प्रस्तुत घोड़े पर रख रहा था चेतक ने प्राण त्याग दिए।उस घोड़े में स्वामी भक्ति इतनी कूट-कूट कर भरी थी कि मरते दम तक उसने महाराणा प्रताप को शत्रुओं के हाथ नहीं आने दिया। चेतक की मृत्यु से राणा को बहुत दुख हुआ। उन्होंने वही उसकी स्मृति में एक चबूतरा बनवा दिया जो अब तक खड़ा है।

स्वस्थ होने के बाद फिर वे अगले संघर्ष की तैयारी करने लगे परंतु आर्थिक स्थिति इतनी खराब हो चुकी थी कि बच्चों को कई-कई दिनों तक खाना नहीं मिलता था ।एक दिन जब घास से बनी रोटी का टुकड़ा भी एक जंगली बिलाव उनके बच्चे के हाथों से छीन कर ले गया, तब बच्चे की पीड़ा उनसे देखी नहीं गई।उन्होंने अकबर को संधि पत्र लिखा। जिसे पढ़कर अकबर खुश हुआ, परंतु उसके दरबार में एक कवि पृथ्वीराज रहता था। उसने कहा, ''यह महाराणा प्रताप का लिखा पत्र नहीं है। मैं उनकी लिखावट पहचानता हूं।'' वह अकबर से आज्ञा लेकर

इसके सत्यता की जांच करने की स्वीकृति प्राप्त करके राणा प्रताप को जोशीला पत्र लिखा और उनके स्वाभिमान को जगाया।

पृथ्वीराज के पत्र को पढ़कर राणा प्रताप में राजपूताना खून फिर जागा। चलते-चलते जब महाराणा प्रताप ऋषभदेव के पास पहुंचे, वहां उन्हें भामाशाह मिले उन्होंने उन्हें पूरी कहानी सुनाई।भामाशाह ने अपने पास जमा की हुई पच्चीस हजार मोहरें देकर उनकी मदद की। महाराणा प्रताप ने पहले लेने से इनकार किया, लेकिन भामाशाह के आग्रह करने पर उसे स्वीकार कर लिया तथा उस धन से सेना एकत्र की और पुनः आमेर के किले पर चढ़ाई कर दी और उसे जीत लिया। इस तरह ३२ किले जीत लिए। संपूर्ण मेवाड़ में से केवल दो किले जीतना बाकी रह गया था। महाराणा प्रताप ने अपने मेवाड़ को संपूर्ण स्वतंत्र कराने की प्रतिज्ञा के करीब ही थे कि १९ जनवरी १५९६ को उनकी मृत्यु हो गई। भारत के इस महान योद्धा ने घास की रोटी खायी परंतु अपने स्वाभिमान एवं प्रतिज्ञा पर अटल रहे। मरने से पहले उन्होंने अपने बड़े पुत्र अमर सिंह को बुलाकर कहा, 'बेटा अमर सिंह मैंने चित्तौड़ को आजाद कराने की प्रतिज्ञा की थी ,मैं उसे पूरा ना कर सका। अमर सिंह ने कहा,' 'पिताजी, आप चिंता ना करें आपके अपूर्ण कार्य को मैं पूर्ण करने का वचन देता हूं।' यह सुनकर महाराणा प्रताप खुश हो गए और सदा-सदा के लिए भारत माता की गोद में सो गए ।शहीद होने के बाद भी आज वे अमर हैं तथा भारतवासियों के लिए प्रेरणा के स्रोत बने हैं।

समाज सुधारक गुरु नानक देव

''प्रत्येक व्यक्ति में भगवान का निवास होता है इसलिए हमें धर्म जाति लिंग राज्य के आधार पर एक दूसरे से भेदभाव नहीं करना चाहिए।'' यह पवित्र विचार किसी और के नहीं बल्कि सिखों के प्रथम गुरु व सिख धर्म के संस्थापक गुरुनानक के हैं। उनका कहना था, धन-धान्य से परिपूर्ण राज्यों के राजाओं की तुलना उस एक चींटी से नहीं किया जा सकती जिसका हृदय ईश्वर भक्ति से भरा हुआ है। वे एक महान पुरुष व महान धर्म प्रवर्तक थे। जिन्होंने विश्व से सांसारिक अज्ञानता को दूर कर आध्यात्मिक शक्ति को आत्मसात करने हेतु प्रेरित किया। वे मूर्ति पूजा के कट्टर विरोधी थे। नानक देव का जन्म १५ अप्रैल १४६९ ई. को पंजाब के लाहौर जिले के तलवंडी नामक ग्राम में हुआ था। जो वर्तमान में पश्चिम पंजाब में ननकाना साहब के नाम से प्रसिद्ध है। उनके पिता कालू चंद बेदी तलवंडी में पटवारी का

कार्य करते थे तथा माता तृप्ता देवी एक धर्म परायण महिला थी। जिसका संस्कार बालक नानक पर पड़ा।

नानक स्वभाव से एकांत प्रिय चिंतनशील एवं कुशाग्र बुद्धि के बालक थे। उनका मन स्कूली शिक्षा की अपेक्षा साधु संतों की संगत में अधिक लगता था। बालक नानक ने संस्कृति अरबी व फारसी भाषा का ज्ञान घर पर अर्जित किया। एक बार नानक के पिताजी ने उन्हें चिड़ियों से फसल को बचाने के लिए खेत में भेजा। वहां जाकर नानक ने देखा की चिड़िया खेत में दाना चुग रही है।उसे देखकर उनके मन में विचार आया कि ईश्वर ने सबको बनाया है। चिड़िया और अनाज उन्हीं का दिया हुआ है, इसलिए चिड़ियों को उड़ाने की अपेक्षा उन्होंने बड़े प्रेम से दाना चुगने दिया और कहा 'राम की चिड़िया राम का खेत, चुग लो चिड़िया भर-भर पेट'। लोग कहते हैं उस वर्ष खेत में पिछले वर्ष की अपेक्षा कई गुना अनाज पैदा हुआ। बचपन में उनके जीवन में अनेक अद्‌भुत घटनाएं घटित हुई। जिससे लोगों ने समझ लिया नानक एक असाधारण बालक है। नानक का मन गृहस्थ जीवन में नहीं लगता था। इसे देखकर उनके पिताजी ने व्यापार हेतु कुछ रुपए दिए। ताकि वह गृहस्थ जीवन यापन करें परंतु नानक ने सभी रूपए साधु-संतों, महात्माओं की सेवा में खर्च कर दिए। उनकी दृष्टि से साधु संतों की सेवा से बढ़कर लाभकारी सौदा और कुछ नहीं हो सकता था। इसी प्रकार एक बार नानक चिलचिलाती धूप में किसी गांव में गए थे। धूप के कारण वे चलते- चलते थक गए एवं बेहाल होकर विश्राम करने के लिए बैठ गए। उन्हें कब नींद आ गई, पता नहीं क्योंकि एक बड़े नाग ने अपना फन फैलाकर उन्हें छाया प्रदान कर दी थी। गांव वाले

यह दृश्य देखकर स्तब्ध रह गए। गांव के मुखिया ने उन्हें देव स्वरूप समझकर प्रणाम किया। तब से नानक नाम के आगे देव शब्द जुड़ गया। वह कालांतर में गुरुनानक देव के नाम से प्रसिद्ध हुए। नानक का ध्यान हमेशा ईश्वर एवं दीन-दुखियों की सेवा में लगा रहता था। किसी ने नानक से पूछा, ईश्वर में ध्यान लगाकर आपको क्या प्राप्त हुआ? उन्होंने बड़ी सरलता से जवाब दिया कुछ भी नहीं लेकिन मैंने बहुत कुछ खो दिए। जैसे आकार, चिंता, भय, आयु का भय और मृत्यु भी। उनका कहना था एक ओंकार, सतनाम, कर्ता पुराखु, निर्भाऊ, निर्वैर, अकाल मूरती सैभगुर अजूनी सतगुरु प्रसादी अर्थात भगवान एक है जो सत्य है, जो निर्माण करता है, जो निरंतर है, जिसके मन में कोई बैर नहीं है।जिसका कोई आकार नहीं है। जो स्वयं ही प्रकाशित है। जो जन्म-मृत्यु से परे है। इनके नाम के रूप से ही उनका आशीर्वाद मिलता है।

गुरुनानक ने मुस्लिम धार्मिक स्थलों के भी दर्शन किए।इस परिपेक्ष में बगदाद, पेशावर, हिंगलाज तथा मक्का-मदीना गए। मक्का भ्रमण के दौरान नानक थकान के कारण काबा की ओर पैर करके सो गए। जब वहां के मुसलमानों ने यह दृश्य देखा तो अत्यंत क्रोधित हुए। अद्‌भुत घटना उस समय घटी जब लोग उनका पैर जिस दिशा में करते उन्हें उसी दिशा में काबा के दर्शन होते। यह देखकर सभी ने उनसे श्रद्धा पूर्वक क्षमा मांगी। वे सभी धर्मों को समान मानते थे। जब बाबर ने भारत पर आक्रमण करके कई धार्मिक स्थलों को तोड़, महिलाओं पर अत्याचार किए। बेवक सुर को मौत के घाट उतार दिया।तब भी गुरु नानक ने बाबर के कृतियों को कड़े शब्दों में विरोध किया

और भारत के विचार बाबर के सम्मुख रखा। जिसके कारण उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। मुगलों ने बाबर के विरुद्ध विरोध का बिगुल फूंकने वाले गुरु नानक ने नये स्वतंत्रता आंदोलन का सूत्रपात किया। बाबर द्वारा उनकी गिरफ्तारी सिख इतिहास की दृष्टि से स्वतंत्रता आंदोलन का प्रारंभ है। नानक ने गुरु ग्रंथ साहब नामक ग्रंथ की रचना की यह ग्रंथ पंजाबी भाषा और गुरुमुखी लिपि में है। इसमें कबीर रैदास व मलूक दास जैसे भक्त कवियों की वाणी सम्मिलित हैं। वे जन्म से ही काव्यकार थे। उन्होंने ९४६ शब्दों की रचना की। एक समाज सुधारक के रूप में गुरुनानक नें महिलाओं की स्थिति गरीबी एवं दलितों की दशा सुधारने के लिए कार्य किए।उन्होंने जाति प्रथा एवं मुस्लिम शासकों की नीतियों का विरोध किया। जब गुरु नानक ने देखा कि उनका अंत समय आ रहा है तो उन्होंने भाई राणा जी को द्वितीय नानक के रूप में १५३९ को स्थापित किया अर्थात गुरु पद प्रदान किया एवं कुछ दिनों के पश्चात सचखंड में २२ नवंबर १५३९ को ज्योति ज्योत में समा गई। उनकी जयंती देशभर में प्रकाश पर्व के रूप में मनाई जाती है। प्रकाश पर्व अर्थात मन की बुराइयों को दूर कर उससे सत्य, ईमानदारी और सेवा भाव से प्रकाशित करना है।

कुशल प्रशासक छत्रपति शिवाजी महाराज

भारत वर्ष वीरों की भूमि रही है। यहाँ अनेक महान पुरूषों ने जन्म लिया। जिन्होनें अपने प्राणों की बाजी लगाकर भारत माता के लिए जीवन अर्पित कर दिया। उनमें से ही छत्रपति शिवाजी महाराज एक थे। जिन्होनें अपनी वीरता से मुगलों को घुटने टेकने पर मजबूर कर दिया था एवं कभी परतंत्रता स्वीकार नहीं की।

शिवाजी महाराज का जन्म शक संवत् १५५१ फाल्गुन वद्य तृतीया को अर्थात् १९ फरवरी १६३० को पुणे जिले में जुन्नर के समीप शिवनेरी किले में हुआ था। उनके पिताजी का नाम शाहाजी भोसले एवं माताजी का नाम जीजाबाई था। माताजी धार्मिक प्रकृति की महिला थी। उन्होंने शिवाजी को चरित्र, सत्यप्रियता, वाकपटुता, सजगता, धैर्यशीलता, निर्भयता, जीतने की आकांक्षा, स्वराज का स्वप्न आदि बातों के संस्कार दिये। जबकि शिवाजी के पिता

शाहाजी भोसले एक मराठा सेनापति थे। वे डेक्कन सल्तनत के लिये कार्य करते थे।

शिवाजी के जन्म के समय डेक्कन की तीन इस्लामिक सल्तनतों में बीजापुर, अहमदनगर और गोलकोंडा उनके अधीन था। शिवाजी की माता शिव की आराधना करती थी, इसलिये उनका नाम उन्होंने शिवाजी रखा था। वे धार्मिक प्रवृत्ति की होने के कारण शिवाजी को राम-कृष्ण एवं महापुरूषों की कहानियाँ सुनाया करती थी। जिसका उनके जीवन पर गहरा असर था। अन्याय के प्रति लड़ना एवं प्रजा की सेवा करने का बीज माता जीजाबाई ने ही उनमें बोया था। दादोजी कोंडदेव ने उन्हें बुनियादी लड़ाई की शिक्षा दी थी। घुड़सवारी, तलवार बाजी एवं निशाने बाजी उन्होंने दादोजी कोड़देव से ही सीखे थे। वे मावलों को एकत्रित करके विभिन्न प्रकार के खेल खेला करते थे। बचपन से ही लोगों को संगठित करना, अन्याय के प्रति लड़ना जैसे गुण उनमें समाहित थे।

शिवाजी महाराज का विवाह १४ मई १६४० में सईबाई निंबालकर के साथ लाल महल पुणे में हुआ। मात्र १५ वर्ष की उम्र में ही शिवाजी ने १६४५ में आदिलशाह की सेना पर बिना सूचना दिये आक्रमण करके तोरणा किला जीत लिया था। परंतु आदिलशाह की सेना ने उनके पिताजी को बंदी बना लिया। उनके रिहाई के बाद उनकी मृत्यु हो गई। पिताजी की मृत्यु के बाद शिवाजी ने आक्रमण करते हुए १६५६ में पड़ोसी मराठा मुखिया से जावली का साम्राज्य हथिया लिया।

वर्ष १६५९ में आदिलशाह ने अपने सबसे बहादुर सेनापति अफजलखान को, शिवाजी को मारने के लिए भेजा।

शिवाजी और अफजल खान १० नवंबर १६५९ को प्रतापगढ़ के किले के पास मिले। दोनों के बीच एक शर्त रखी गई। किसी के पास कोई शस्त्र नहीं होगा। सेना नहीं होगी साथ में एक अंगरक्षक होगा। शिवाजी को अफजल खान पर भरोसा नहीं था, इसलिए शिवाजी ने अपने कपड़ों के नीचे कवच पहना और बाघ का नख छिपा लिया। अफजल खान ने जैसे ही तलवार से शिवाजी पर वार किया वैसे ही शिवाजी ने बाघ के नख से अफजल खान के पेट पर वार कर दिया। अफजल खान की आँत बाहर आ गई और कुछ ही क्षण में उसके प्राण पखेरू उड़ गए। इसके बाद शिवाजी के सैनिकों ने बीजापुर पर आक्रमण कर दिया।

१० नवंबर १६५९ को प्रतापगढ़ में युद्ध हुआ, जिसमें शिवाजी की सेना ने बीजापुर के सल्तनत की सेना को हरा दिया। मुगलों के शासक औरंगजेब ने अपने मामा शाहिस्ता खान को शिवाजी का पराभव करने के लिए भेजा, परंतु शिवाजी मावलों के सामने उसकी एक न चली। शिवाजी महाराज ने उसके भागते समय तीन उंगलियाँ काट ली। शाहिस्ता खान ने पुणे से बाहर मुगल सेना के पास जाकर शरण ली। औरंगजेब ने छल करके शिवाजी महाराज को आगरा बुलाकर कैद कर लिया। शिवाजी ने छुटकारा पाने के लिए बीमार होने का ढोंग किया। बीमारी से ठीक होने के लिए उन्होंने संत, फकीरों को मिठाई के पिटारे भेजने की बात रखी जिसकी उन्हें अनुमति मिल गई। कुछ दिनों बाद वे मिठाई के पिटारे में बैठकर कैद से नौ दो ग्यारह हो गए। वहाँ से निकलकर उन्होंने साम्राज्य का अच्छा खासा विस्तार किया। स्वराज्य की स्थापना की एवं अपना राज्य अभिषेक

करवाया। राज्याभिषेक के बाद उन्होंने राज्य का कार्य सुचारू रूप से चलाने के लिए अष्टप्रधान मंडल की स्थापना की। उनके राज्याभिषेक के १२ दिन बाद ही उनकी माता का देहांत हो गया। शिवाजी महाराज ने संस्कृत भाषा को बढ़ावा दिया, क्योंकि उनके परिवार में संस्कृत का ज्ञान अच्छा था। उन्होंने किलों का नाम भी संस्कृत में रखा था।

शासकीय कार्यों के लिए मराठी एवं संस्कृत को प्रधानता दी थी। शिवाजी कट्टर हिंदू थे, परंतु फिर भी उन्होंने मस्जिद निर्माण के लिए काफी दान दिया था। हिंदू पंडितों की तरह मुसलमान संतों और फकीरों को बराबर सम्मान देते थे। उनकी सेना में कई मुस्लिम सैनिक भी थे। उनके पास नौसेना भी थी। वे दूरदृष्टि रखते थे। एक स्वतंत्र शासक की तरह उन्होंने अपने नाम का सिक्का चलाया था। जिसे शिवराई कहते थे। यह सिक्का संस्कृत में था। ३ अप्रैल १६८० में लगातार ३ सप्ताह तक बीमार रहने के बाद शिवाजी का निधन रायगढ़ में हो गया।

आधुनिक भारत के जनक राजा राजाराम मोहनराय

आधुनिक भारत के जनक ''राजाराम मोहन राय'' का जन्म २२ मई १७७२ को राधा नगर गाँव जिला हुगली, पश्चिम बंगाल में एक साधारण ब्राह्मण परिवार में हुआ था। इसके माता का नाम तारिणी देवी राय तथा पिता का नाम रमाकांत राय था। वे बेहद धार्मिक प्रवृत्ति के थे एवं अपना अधिक से अधिक समय ईश्वर भक्ति में व्यतीत करते थे। राजाराम मोहन राय अपने माता-पिता की ईश्वर के भक्ति के संदर्भ में कई ऐसे प्रश्न पूछते थे कि उनके माता-पिता उनका उत्तर नहीं दे पाते थे। वे कहते थे, कि हम मूर्ति पूजा और वृक्ष की पूजा क्यों करते हैं? और ऐसा क्यों कहते हैं कि इससे सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। उनके इन सवाल के लिए माता-पिता के पास कोई तर्क नहीं होने की वजह से अक्सर घर में कलेश होते रहते थे।

उनकी प्राथमिक शिक्षा उनके गाँव के ही एक स्कूल में संस्कृत और बंगाली में हुई। उसके बाद उन्हें एक मदरसा में अध्ययन करने के लिए पटना भेजा गया। जहाँ उन्होंने फारसी और अरबी भाषा सीखी। राजाराम मोहनराय ने अपनी शिक्षा को आगे बढ़ाने के बाद संस्कृत, वेदों और उपनिषदों जैसे हिंदू शास्त्रों की जटिलताओं को जानने के लिए काशी गए। २२ साल की उम्र में उन्होंने अंग्रेजी भाषा सीखी। उस समय बाल विवाह प्रथा का प्रचलन था। उनकी शादी ९ वर्ष की उम्र में ही कर दी गई। लेकिन उनकी प्रथम पत्नी का जल्द ही देहांत हो गया। इसके बाद १० वर्ष की उम्र में उनकी दूसरी शादी की गई। जिससे उनके दो पुत्र हुए, लेकिन १८२६ में उस पत्नी का भी देहांत हो गया। इसके बाद उनकी तीसरी पत्नी थी, जो ज्यादा समय तक जीवित नहीं रह सकी।

वे हिंदू पूजा और परंपराओं के खिलाफ थे उन्होंने समाज में पहले कुरीतियों और अंधविश्वासों का पुरजोर विरोध किया। लेकिन उनके पिता एक पारम्परिक और कट्टर ब्राह्मण धर्म का पालन करने वाले थे। १४ वर्ष की उम्र में उन्होंने समाज से संन्यास लेने की इच्छा व्यक्त की, लेकिन उनकी माँ ने यह बात नहीं मानी। जिसके कारण माता-पिता से मतभेद होने के कारण कुछ दिन बाद वे अपना घर छोड़कर हिमालय और तिब्बत की तरफ चले गए।

उन्होंने सत्य की विजय के लिए काफी भम्रण किया। बनारस जाकर उन्होंने उपनिषद और हिंदू दर्शन शास्त्र का अध्ययन किया, लेकिन जब उनके पिता का देहांत हुआ तो १८०३ में वे मुर्शिदाबाद लौट आए। पिता की मृत्यु के बाद

कलकत्ता में वे जमीनदारी का काम देखने लगे। १८०५ में ईस्ट इंडिया कंपनी में काम पर लग गए। १८०५ से १८१४ तक उन्होंने ईस्ट इंडिया कंपनी के रेवेन्यू डिपार्टमेंट में काम किया।

समाज सुधार के लिए उन्होंने ईस्ट इंडिया कंपनी की नौकरी छोड़ दी। राजाराम मोहनराय १८१५ में शिक्षा के क्षेत्र में काम करने के लिए कलकत्ता आए थे। उनका मानना था कि भारतीय यदि गणित जियोग्राफी और लैटिन नहीं पढ़ेंगे तो पीछे रह जाएंगे। इतना होने के बाद भी उन्होंने सबसे पहले अपनी मातृभाषा के विकास पर ध्यान दिया। उनका गुड़िया व्याकरण, बंगाली साहित्य की अनुपम कृति है। उन्होंने 'ब्राह्मम समाज' की स्थापना की। बाद में रंगपुर की कलेक्ट्री में दीवान बन गए।

राजाराम मोहनराय स्वभाव से अत्यंत शिष्ट थे। लेकिन अन्याय के सख्त विरोधी थे। उन दिनों एक नियम बनाया गया था, कि यदि कोई अंग्रेज अधिकारी दिखाई दे तो उसे अपनी सवारी से उतर कर सलाम करना होगा। वरना उस व्यक्ति को अंग्रेज अफसर के अपमान का दोषी माना जाएगा। राजाराम मोहनराय पालकी में सवार होकर कहीं जा रहे थे। तभी रास्ते में कलेक्टर सर फ्रेडरिक हेमिल्टन खड़े थे। अनजाने में ही पालकी चलाने वाले ने उनको नहीं देखा और आगे बढ़ गया। हेमिल्टन को यह देखकर गुस्सा आ गया और उसने तुरंत पालकी रूकवा दी। राजाराम पालकी से उतरे और उस कलेक्टर से नमस्कार कर पालकी रोकने का कारण पूछा! लेकिन उन्होंने राजाराम मोहनराय की एक बात नहीं सुनी और उनका अपमान किया। उस समय राजा राममोहन राय चुप रहे और वहाँ से निकल गए, लेकिन उन्होंने इस घटना की शिकायत लार्ड मिंटो तक भेजी।

आगे चलकर राजाराम ने इस असभ्य नियम के खिलाफ कानून पास करवा कर ही दम लिया।

१८०३ में राय ने हिंदू धर्म और इनमें शामिल विभिन्न मतों में अंधविश्वासों पर अपनी राय रखी। १८१६ में उनकी पुस्तक वेदांत सार का प्रकाशन हुआ। जिसके माध्यम से उन्होंने ईश्वर वाद और कर्मकाण्ड की घोर आलोचना की। उन्होंने तिब्बत जाकर बौद्ध धर्म का अध्ययन किया। उस समय बाल विवाह की प्रथा थी, इसलिये उनकी शादी ९ वर्ष की उम्र में ही कर दी गई। लेकिन उनकी पत्नी का जल्द ही देहांत हो गया। इसके बाद १० वर्ष की उम्र में उनकी दूसरी शादी की गई जिससे उन्हें दो पुत्र हुये, लेकिन १८२६ में उनकी पत्नी का भी देहांत हो गया और इसके बाद उनकी तीसरी पत्नी भी ज्यादा समय जीवित नहीं रह सकी।

राजा राममोहन राय ने महिलाओं के अधिकारों की रक्षा के लिए कई मुहिम चलाई। जिनमें विधवा विवाह और महिलाओं को जमीन संबंधित हक दिलाना, उनके मुख्य उद्देश्यों में एक था। राजाराम मोहनराय ने कभी यह नहीं सोचा था, कि वे जिस सती प्रथा का विरोध कर रहे हैं और समाज से जिसे मिटाना चाहते हैं, उनकी भाभी भी उसी का शिकार हो जाएगी। राजाराम मोहनराय किसी काम के लिए विदेश गए थे और इसी बीच उनके भाई की मृत्यु हो गई, उसके बाद समाज के ठेकेदारों ने सती प्रथा के नाम पर उनकी भाभी को जिंदा जला दिया।

इसके बाद मोहन राय ने सती प्रथा के खिलाफ अपने आंदोलन को तेज कर दिया। भाभी के त्याग के बाद उन्होंने ठान लिया था कि अब ऐसा किसी महिला के साथ नहीं होने देगें।

उन्होंने समाज की कुरीतियों के खिलाफ गवर्नर जनरल लॉर्ड विलियम बैटिंग की मदद से सन् १९३० में सती प्रथा के खिलाफ कानून बनाया। उनकी पत्नी की बहन जब सती हुई तब वे बहुत विचलित हो गए। इस कारण राजाराम मोहनराय ने सती प्रथा का कठोर विरोध किया। वे बाल विवाह के भी कड़े विरोधी थे। उन्हे सती प्रथा के विरोध में चलाए जाने वाले अभियानों को तब सफलता मिली जब १८२९ में सती प्रथा पर रोक लगा दी गई।

वे शिक्षा को अधिक महत्व देते थे। उन्होंने महिलाओं की शिक्षा के लिए कई कार्य किए। उनका मानना था, कि अंग्रेजी भारतीय भाषाओं से समृद्ध भाषा है। १८२२ में उन्होनें इंग्लिश मीडियम स्कूल की स्थापना की। उन्होंने विज्ञान विषय जैसे भौतिक शास्त्र, रसायन शास्त्र एवं वनस्पति शास्त्र को भी प्रोत्साहन दिया। १८२८ में उन्होनें ब्रह्म समाज की स्थापना की। जिसके द्वारा वे धार्मिक लोगों का सही चेहरा समाज के लोगों को दिखाने का प्रयत्न करते रहे। उन्होंने मूर्ति पूजा का भी खुलकर विरोध किया और एक ईश्वर के पक्ष में अपने मत रखें। उन्होंने लोगों को अपनी तर्कशक्ति और विवेक को विकसित करने का सुझाव दिया। भारतीय समाज का जातिगत वर्गीकरण उस समय तक पूरी तरह बिगड़ चुका था। ये कर्म आधारित न होकर वर्ण आधारित हो चला था। राजाराम मोहनराय ने जातिवाद के कारण उपजी असमानता का भी विरोध किया था। उनका मानना था कि सबको समान हक मिलना चाहिए।

भारत की पत्रकारिता क्षेत्र में भी राजाराम मोहनराय का बहुत बड़ा यागेदान रहा। उन्होंने जनता को जागरूक करने के लिए बंगाली और हिंदी के साथ ही साथ अंग्रेजी भाषा का भी

प्रयोग किया था। जिससे उनकी बात सिर्फ आम जनता तक नहीं बल्कि तब के प्रबुद्ध और अंग्रेजी हुकूमत तक भी पहुँच जाती थी। वे किसानों के पक्षधर थे। वे प्रत्येक आम व्यक्ति की प्रापर्टी की रक्षा करने के लिए सरकार का हस्तक्षेप चाहते थे।

१८१६ में राजाराम मोहनराय ने इशोपनिषद, १८१७ में कठोपनिषद, १८१९ में मंडूक उपनिषद के अनुवाद लिखे। इसके बाद उन्होंने 'गाइड टू पीस एंड हैप्पीनेस', १८२१ में उन्होंने एक बंगाली अखबार 'संवाद कुमुदी' भी लिखा। १८२९ में दिल्ली के राजा अकबर द्वितीय ने उन्हें राजा की उपाधि दी थी। उन्हें १८३० में मुगल सम्राट द्वारा कुछ कार्यों को सुनिश्चित करने के लिए इंग्लैंड भेजा गया। यात्रा के दौरान राजाराम मोहन राय की मृत्यु २७ सितंबर १८३३ को ब्रिस्टल के पास स्टाप्लेटोन में मेनिन्जाईटिस के कारण हुई। उन्हें इंग्लैंड की ब्रिस्टल आनर्स दिल्ली कब्रिस्तान में दफनाया गया। इस प्रकार एक नए भारत के रचियता का स्वर्गवास हो गया, उनके सम्मान में ब्रिस्टल की सड़क को उनका नाम दिया गया है।

स्वामी दयानंद सरस्वती

भारत संत महात्माओं की भूमि रही है। संत महात्माओं ने समाज सुधार के अनेक कार्य किए।संत महात्माओं में स्वामी दयानंद सरस्वती का नाम अग्रणीय है। अपने व्यक्तित्व और बेमिसाल प्रभाव के कारण जन-जन के मन में आदर पूर्वक उनका नाम बसा हुआ है। स्वामी दयानंद ने अंधविश्वासों और अमानवीय तत्वों का जमकर विरोध किया एवं मानवीय शांति का दिव्य संदेश दिया। उन्होंने अपनी राष्ट्रभाषा हिंदी को मान्यता देने के लिए स्वभाषा और जाति के स्वाभिमान को जगाया।

स्वामी दयानंद का उदय हमारे देश में तब हुआ था जब चारों ओर से हमें विभिन्न प्रकार के संकटों और आपदाओं का सामना करना पड़ रहा था। उसी समय हम विदेशी शासन की बागडोर से कस दिए गए और सब प्रकार के मूल अधिकारों से वंचित करके अमानवीय वातावरण में जीने के लिए बाध्य कर दिए गए थे। स्वामी दयानंद जी ने अपने वातावरण, समाज और राष्ट्र सहित विश्व की इस प्रकार की मानवता विरोधी गतिविधियों

का गंभीरता पूर्वक अध्ययन किया और उन्हें जड़ से उखाड़ देने का दृढ़ संकल्प भी किया।

स्वामी दयानंद का जन्म गुजरात राज्य के पूर्वी क्षेत्र में स्थित टंकारा (गुजरात) नामक स्थान में १२ फरवरी सन १८२४ को हुआ था। स्वामी दयानंद जी का बचपन का नाम मूल शंकर था। स्वामी जी की आरंभिक शिक्षा संस्कृत विषय के साथ हुई। स्वामी जी के जीवन में एक ऐसी घटना घटी कि स्वामीजी ने एक दिन शिवरात्रि के शुभ अवसर पर शिवलिंग की पूजा करते समय चूहे को देखा। इसे देखकर स्वामी जी के मन में भगवान शिव के प्रति जानकारी प्राप्त करने की लालसा या अभिलाषा अत्यंत तीव्र हो गई। लगभग ३० वर्ष की आयु में वे अपने संपन्न परिवार को छोड़कर सन्यास पद पर निकल पड़े। वे योग साधना करके शिव के प्राप्ति के लिए कठोर साधना सिद्धि की खोज में निकल पड़े थें। इस साधना सिद्धि के पद के योग्य सिद्धियों और महात्माओं से मिलते रहे। वे विभिन्न तीर्थ स्थलों, धार्मिक स्थानों और कुछ क्षेत्रों में भी भ्रमण करते रहे। बद्रीनाथ, हरिद्वार, केदारनाथ, मथुरा आदि आध्यात्मिक क्षेत्रों का भ्रमण स्वामी जी ने किया। मथुरा में स्वामी जी को तात्कालिक महान योगी और संत स्वामी विरजानंद जी का संपर्क प्राप्त हुआ, उनके निर्देशन में स्वामी जी ने लगभग ३५ वर्ष तक वेदों का अध्ययन किया। स्वामी विरजानंद जी ने जब यह भली भाँति संतोष प्राप्त कर लिया कि दयानंद का अध्ययन, शिक्षा-दीक्षा पूर्ण हो चुकी है, तो उन्होंने अपने इस अद्‌भुत शिष्य को दिव्य आदेश दिया कि ''अब, जाओ और देश में फैले हुए समस्त प्रकार के अज्ञानता के अंधकार को दूर करो''। वे आदेश को शिरोधार्य करके दायित्व का निर्वाह करने

लगे। उन्होंने संपूर्ण देश का भ्रमण किया। देश के विभिन्न भागों में परिभ्रमण करते स्वामी जी ने आर्य समाज की स्थापना की। अंध विश्वास तथा समाज से अज्ञानता मिटाने हेतु उन्होंने 'सत्यार्थ प्रकाश' की रचना की।

समस्त राष्ट्र में फैले अज्ञानता रूपी अंधकार गोस्वामी जी ने 'मनसा, वाचा, कर्मणा' और अन्य प्रभावी शक्तियों के द्वारा दूर करने का भागीरथी प्रयास किया। उन्होंने अपने प्राण-प्रण से सभी भारतीयों की मानसिक गुलामी को झकझोर देने के लिए प्रचंड प्रलय के समान तीव्र विचारों को धीरे-धीरे भरना शुरू कर दिया।

स्वामी जी का जीवन ब्रह्मचर्य था। स्वामी जी ने सुशील,बुद्धिबल और पराक्रम युक्त दीर्घायु श्रीमान् संतान की उत्पत्ति इसी के द्वारा संभव कही थी, इसलिए स्वामी जी ने २५ वर्ष से पूर्व पुत्र और १६ वर्षों से पूर्व कन्या का विवाह न करने का सुझाव दिया था। स्वामी जी ने अपने भारत के प्रति अपार प्रेम भक्ति को प्रकट करते हुए व्यक्त किया कि मैं देशवासियों के विकास के लिए और संसार में सम्मान पूर्वक स्थान प्राप्त करने के लिए प्रतिदिन प्रातः काल और सायं भगवान की प्रार्थना करता हूं कि वह दयालु भगवान मेरे देश को विदेशी शासन से शीघ्र मुक्त करें।

स्वामी जी ने बाल विवाह का कड़ा विरोध करते हुए इसे निर्बलता और तेज हीनता का मुख्य कारण ही नहीं माना अपितु इसके द्वारा सामाजिक पतन के अंतर्गत विधवापन का मूल कारण बताया क्योंकि बाल-विवाह अल्प आयु में होने के कारण शक्तिहीनता को जन्म देता है। जिससे कम उम्र में मृत्यु हो जाना स्वभाविक हो जाता है।इस बाल विवाह की प्रथा पर रोक लगाने

के सुझाव के साथ ही साथ स्वामी जी ने विधवा पुनर्विवाह की जोरदार प्रथा चलाई थी।

स्वामी दयानंद सरस्वती जी ने हिंदी भाषा को राष्ट्रभाषा के रूप में मान्यता दिलाने के लिए भरपूर कोशिश की। उनकी हिंदी के प्रति अपार अनुराग और श्रद्धा थी। यद्यपि अहिंदी भाषी थे लेकिन उन्होंने संस्कृत भाषा और वैदिक धर्म को ऊंचा स्थान दिलाने के लिए हिंदी को भी प्रतिष्ठित किया है। यही कारण है कि आर्य समाज की संस्थापना संस्था पर दयानंद विद्यालय-महाविद्यालय भी भारतीय शिक्षा के प्रचार प्रसार कार्य में लगे हुए हैं। वास्तव में स्वामी दयानंद सरस्वती एक युगपुरुष थे। जो कालांतर तक निरंतर श्रद्धा के साथ याद किए जाते रहेंगे। हमारा यह दुर्भाग्य ही था कि स्वामी जी को धर्म प्रचार जोधपुर नरेश के यहां एक वेश्या ने प्रतिशोध की दुर्भावना से विषाक्त दूध पिला दिया। जिससे उनकी लगभग ५९ वर्ष की अल्पायु में ३० अक्टूबर सन् १८८३ में उनकी मृत्यु हो गई।

झांसी की रानी लक्ष्मीबाई

भारतवर्ष त्याग और बलिदान की भूमि है। यहां जितना त्याग पुरुषों ने किया है उतना ही किसी ना किसी रूप में नारियों ने अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए युद्धों में प्राण दिए। स्त्रियों ने जौहर की ज्वाला में भस्मसात होकर अमूल्य बलिदानों का परिचय दिया। मातृभूमि की रक्षा के लिए किसी ने अपने भाई को खोया, किसी ने अपने पति को, परंतु ऐसे उदाहरण कम हैं जिन्होंने स्वयं रणभूमि में स्वतंत्रता की बलिवेदी पर अपने को हंसते-हंसते चढ़ा दिया हो। ऐसी आदर्श महिलाओं में झांसी की रानी लक्ष्मीबाई अग्रणीय है। अपने देश से विदेशियों को बाहर निकालने के लिए उन्होंने घोर युद्ध किया। जिस स्वतंत्रता रूपी मधुर फल का आज हम लोग आस्वादन कर रहे हैं, उसका बीजारोपण महारानी लक्ष्मीबाई ने ही किया था। स्वतंत्रता संग्राम का श्रीगणेश झांसी की रानी के कर-कमलों द्वारा संपन्न हुआ था और इस

पवित्र यज्ञ में प्रथम आहुति भी उन्होंने दी थी। भारतीयों के लिए उनका आदर्श जीवन अनुकरणीय है।

लक्ष्मीबाई के पिता का नाम मोरोपन्त और माता जी का नाम भागीरथी था। बालिका के जन्म के समय ये लोग काशी वास कर रहे थे क्योंकि बाजीराव द्वितीय राजगद्दी से हटा दिए गए थे और वे बिठूर में रहकर अपना जीवन यापन कर रहे थे। सन १८३५ में भागीरथी की गर्भ से एक कन्या ने जन्म लिया जिसका नाम मनुबाई रखा गया। आगे चलकर यही लक्ष्मीबाई और झांसी की रानी के नाम से प्रसिद्ध हुई। जन्म के चार-पांच वर्ष बाद ही मनुबाई की माता का देहांत हो गया। मोरोपंत काशी से बिठूर लौट आए। मनुबाई के लालन-पालन का सारा भार अब इन्हीं पर था। बाजीराव पेशवा के दत्तक पुत्र नाना साहब और राव साहब के साथ मनुबाई खेलती और पढ़ती थी। सभी इन्हें छबीली के नाम से पुकारते थे। पढ़ने और लिखने के साथ-साथ मनुबाई नाना साहब के साथ अस्त्र-शस्त्र का भी अभ्यास करती थी। किसी विशेष उद्देश्य से नहीं केवल खेल के बहाने से ही शस्त्रों के साथ घोड़े पर चढ़ना, नदी में तैरना, आदि गुण भी यथावत सीख लिये थे। इस विषय में सुभद्रा जी ने लिखा है

"नाना के संग पढ़ती थी वह, नाना के संग खेली थी।
बरछी, ढाल, कृपाण, कटारी उसकी सखी सहेली थी।"

बिठूर के स्वतंत्रत वातावरण में बाजीराव पेशवा की स्वतंत्रता से भरी हुई कहानियों ने उसके हृदय में स्वतंत्रता के प्रति अगाध स्नेह उत्पन्न कर दिया था। सन १८४२ में मनुबाई का विवाह झांसी के अंतिम पेशवा राजा गंगाधर राव के साथ हुआ। मनु बाई झांसी की रानी लक्ष्मीबाई बन गई। राजमहलों में

आनंद मनाए गए। प्रजा ने प्रसन्नता में घर-घर दीप जलाए। लक्ष्मीबाई प्रजा के सुख-दुख का विशेष ध्यान रखती थी, उन्होंने राजमाता के पद से अपने प्रजा को कभी कष्ट नहीं होने दिया फलस्वरूप जनता भी उन्हें प्राणों से अधिक चाहती थी। विवाह के नौ वर्ष बाद लक्ष्मीबाई ने एक पुत्र को जन्म दिया। गंगाधर राव प्रसन्नता से फूले न समाए। राजभवन में शहनाइयां बज उठी। परंतु जन्म से तीन महीने बाद ही वह इकलौता पुत्र चल बसा। क्या पता था, कि वह लक्ष्मीबाई की गोद को सदैव-सदैव के लिए सूनी करके चला जाएगा। पुत्र वियोग में गंगाधर राव बीमार पड़ गए। अनेक उपचारों के बाद भी जब स्वस्थ ना हुए तो उन्होंने अंग्रेज एजेंट की उपस्थिति में ही दामोदर राव को अपना दत्तक पुत्र स्वीकार किया। रानी के ऊपर अभी विपत्ति के काले बादल छाऐ थे। २१ नवंबर, १८५३ को रानी का सौभाग्य सूर्य सदा के लिए अस्त हो गया। किसे पता था, कि इतने लाड प्यार से पली मनुबाई २८ वर्ष की छोटी सी अवस्था में ही वैधव्य का मुख देख लेगी। सारे राज्य में भयानक हाहाकार मच गया। राजभवन की चित्कार सुनकर जनता का हृदय विदीर्ण होने लगा, परंतु विधाता की गति के सामने किस की इच्छा चलती है।

गंगाधर राव की मृत्यु के पश्चात झांसी की रानी को असहाय और अनाथ समझकर अंग्रेजों की स्वार्थलिप्सा भड़क उठी। वे अपने साम्राज्य विस्तार के चक्कर में थे। उन्होंने दत्तकपुत्र को अपने एक पत्र में अवैधानिक घोषित कर दिया और रानी को झांसी छोड़ने की आज्ञा हुई। परंतु लक्ष्मीबाई ने स्पष्ट उत्तर दिया कि 'झांसी मेरी है, मैं प्राण रहते इसे नहीं छोड़ सकती।'

रानी ने विचार किया कि अंग्रेज कूटनीतिज्ञ हैं। इसके साथ कूटनीति से ही काम लेना चाहिये। रानी ने पांच हजार रुपये पेंशन के रूप में स्वीकार कर लिये और गुप्त रूप से अपने शक्ति संचय में लग गई। लक्ष्मीबाई ने स्वतंत्रता के प्रथम संग्राम में श्री गणेश के लिए जो तिथि और समय निश्चित किया दुर्भाग्य से उस समय से पूर्व ही समस्त भारत में विद्रोह आरंभ हो गया झांसी की रानी लक्ष्मीबाई प्रमुख रूप से परंतु गुप्त नीति से उसका संचालन कर रही थी। जगह-जगह पर अंग्रेज कटने लगे। सर्वत्र शासन-व्यवस्था शिथिल पड़ गई। धीरे-धीरे अंग्रेजों ने देशव्यापी विद्रोह को काबू में किया, परंतु आग धधकती रही, उपद्रव पूर्ण रूप से शांत नहीं हुआ।

सन १८४८ आरंभ हो चुका था। ह्वरोज ने झांसी की ओर प्रस्थान किया। झांसी की रानी पहले से ही पूर्ण प्रबंध किये हुए तैयार बैठी थी। अंग्रेज उन्हें साधारण स्त्री समझ बैठे थे। उन्हें क्या पता था कि यह साधारण स्त्री उनके दांत खट्टे कर देगी। २५ मार्च को घमासान युद्ध प्रारंभ हो गया। दोनों और से गोलियों की बौछारे होने लगी। कभी तोपों से गोले दागे जाते तो कभी गोलियों की बौछार होती। रानी अपनी सेना के साथ दुर्ग में थी और बड़ी सतर्कता व तत्परता से दुर्ग की रक्षा कर रही थी। रानी के तोपची धड़ाधड़ अंग्रेजों को उड़ा रहे थे। शत्रुओं के पैर कांपने लगे थे। परंतु उनके पास अत्याधिक शक्ती थी। अतः वे पीछे न हटें। युद्ध होता रहा, पर ३१ मार्च तक अंग्रेज रानी के दुर्ग पर अधिकार न कर सके। लक्ष्मीबाई ने वीर तात्या टोपे से सहायता की याचना की। वे भी समय पर आ पहुँचे, दोनों सेनाओं में घमासान युद्ध होने लगा। एक न एक विश्वासघाती देशद्रोही हर

जगह रहता है। दूल्हा जी सरदार, दुर्ग के दक्षिण द्वार पर था वह अंग्रेजो से मिल गया। उसने अंग्रेजी सैनिक को दुर्ग के कोठे पर चढ़ा लिये। दुर्ग में भयानक मारकाट होने लगी। रानी ने एक बार अपने गढ़ के कोठे पर से अपनी प्यारी झांसी को देखा और अपने दत्तक पुत्र दामोदर राव को लेकर किले से बाहर निकल आई। विदेशियों ने रानी को पकड़ने का प्रयत्न किया परंतु शत्रुओं का विध्वंस करती हुई लक्ष्मीबाई आगे बढ़ती चली गई पर वे किसी के हाथ ना आई। श्रीमती सुमन कुमारी चौहान ने उनकी रणचातुर्य का वर्णन इस प्रकार किया है-

'रानी थी या दुर्गा थी, वह स्वयं वीरता की अवतार
देख मराठे पुलकित होते, उसकी तलवारों के वार'।।

अंग्रेज वॉकर उनका निरंतर पीछा कर रहा था। दूसरे दिन उसने भंडारे में रानी को जा घेरा। रानी ने उसे बुरी तरह से घायल करके वही डेर कर डाला और स्वयं आगे बढ़ गई। एक दिन और एक रात निरंतर चलते-चलते रानी कालपी पहुंची, तभी उनके प्यारे घोड़े ने अपना दम तोड़ दिया। रानी ने उसकी वही अंत्येष्टि क्रिया की। अब रानी के सामने कालपी की रक्षा का प्रश्न था। अंग्रेज वहां भी पहुंच गए। गोलाबारी होने लगी। कालपी पर भी अंग्रेजों का अधिकार हो गया। महारानी लक्ष्मी बाई तथा राव साहब वहां से भी भाग निकले और सीधे ग्वालियर पहुंचे और उस पर अधिकार कर लेने का निश्चय किया। ग्वालियर के राजा सिंधियाराव पहले से ही अंग्रेजों की अधीनता स्वीकार कर चुके थे। ग्वालियर में रानी का अंग्रेजों से घमासान युद्ध हुआ। खून की नदियां बहने लगी। अकेली लक्ष्मीबाई ने अंग्रेजों के छक्के छुड़ा दिए। जब रानी अपने घोड़े पर बैठे हुए एक नाला पार कर

रही थी तभी एक अंग्रेज ने पीछे से आकर रानी पर प्रहार किया। जिससे उनके शरीर का समस्त भाग घायल हो गया। इसके तुरंत पश्चात उसने उनके सीने पर एक और प्रहार किया। परंतु इसी दशा में उन्होंने अपने शत्रुओं के टुकड़े-टुकड़े कर दिए और स्वयं भी स्वर्ग सिधार गई। शरीरांत होते ही उनके एक प्रिय सेवक ने उनके मृत शरीर में अग्नि लगा दी। जिससे शत्रु उनके शरीर को स्पर्श करके अपवित्र ना कर सके। युद्ध समाप्त हो गया। झांसी और कालपी पर यूनियन जैक फहराने लगा। ग्वालियर तो पहले से ही उनके अधिकार में था।

रानी लक्ष्मीबाई ने देश को स्वतंत्रता का अमर संदेश दिया। स्वतंत्रता की बलिवेदी पर स्वयं बलिदान होकर भारतीयों के लिए एक आदर्श पथ प्रशस्त किया। उनका त्याग और बलिदानपूर्ण जीवन भारतीयों के लिए आज भी अनुकरणीय हैं। यह स्वतंत्रता संग्राम का बीजारोपण महारानी लक्ष्मीबाई ने किया था।१५ अगस्त सन १९४७ को वही वृक्ष फल के भार से झूम उठा। आज उनकी यशोगाथा हमारे लिए जीवन से अधिक मूल्यवान है। सुभद्राकुमारी चौहान ने बहुत सहीं लिखा है :-

'बढ़ जाता है मानवीर का, रण में बलि होने से।
मूल्यवती होती सोने की, भस्म यथा सोने से।।'

क्रांति ज्योति सावित्रीबाई फुले

"शिक्षा स्त्रियों का गहना है। शिक्षा के धार से गुलामी की जंजीर काटी जा सकती है।" जैसे शिक्षा संबंधित विचार रखने वाली भारत की पहली महिला शिक्षिका सावित्री बाई फुले समाज सुधारिका एवं मराठी कवयित्री थी। सावित्रीबाई फुले का जन्म ३ जनवरी १८३१ को महाराष्ट्र के नायगाँव, तहसील-खडांला, जिला-बस्तर में एक किसान दलित परिवार में हुआ था। उनके पिता का नाम खंडोजी राव नेवसे पाटिल तथा माता जी का नाम लक्ष्मीबाई था। १८४० में उनका विवाह ज्योतिराव फुले से हुआ। उस समय सावित्रीबाई ६ वर्ष तथा ज्योतिराव फुले १३ वर्ष के थे।

यह ऐसा समय था जब लड़कियों को शिक्षा से वंचित रखा जाता था। समाज में बाल विवाह प्रथा और छुआ-छूत, दलितों को प्रताड़ित करना, अंधविश्वास, किसानों एवं मजदूरों का

शोषण जैसे अनेक कुरीतियाँ अपने पैर पसार चुकी थी। जिसे देख कर उन्हें बड़ा दुःख होता था। १८४१ में ज्योतिराव फुले की प्रेरणा से सावित्री बाई की शिक्षा का श्री गणेश हुआ। जब सावित्रीबाई ज्योतिराव फुले के लिए खेत में खाना लेकर जाती तब वे उन्हें पढ़ाते एवं शिक्षा के प्रति रूचि पैदा करते। ज्योतिराव के पिताजी गोंविदराव रूढ़िवादी थे। रूढ़िवादियों की बातें सुनकर उन्होंने ज्योतिराव व सावित्रीबाई फुले को घर से बाहर इसलिए निकाल दिया कि उस समय स्त्रियों की शिक्षा पर पाबंदी थी। सावित्रीबाई ने बिना क्रोध दर्शाये ससुराल छोड़कर ज्योतिराव के साथ समाज कार्य के व्रत को पूरा करने, शिक्षा प्राप्त करने एवं लड़कियों को पढ़ाने में लग गई।

जब वे लड़कियों को पढ़ाने जातीं तब विरोधी उन्हें पत्थर, कीचड़, विष्ठा, गोबर इत्यादि फेंककर मारते थे। जिससे उनकी साड़ी खराब हो जाती थी। परंतु 'जहाँ चाह, वहाँ राह' को चरितार्थ करते हुये सावित्रीबाई अपने साथ अतिरिक्त एक साड़ी भी लेकर जाने लगीं। जिसे वे पहुँचकर पहनती थी और लोगों को शिक्षा देती थीं। लोगों की आलोचना एवं निंदा पर उन्होंने कभी ध्यान नहीं दिया। उनका एक मात्र उद्देश्य था, लोगों को शिक्षित बनाना और अपने अधिकारों के प्रति सचेत करना।

उन्होंने सन् १८४७ में नार्मल स्कूल की परीक्षा पास की। महात्मा फुले ने सन् १८४८ ई. में पुणे के भिड़े बाड़ा में लड़कियों की पहली पाठशाला खोली। जिसमें सवित्रीबाई पहली शिक्षिका व पहली मुख्याध्यापिका के रूप में नियुक्ति हुईं।

सावित्रीबाई ने अपने जीवन को एक मिशन की तरह जिया। जिसका उद्देश्य था, विधवा विवाह करवाना, छुआ-छूत

मिटाना महिलाओं की मुक्ति और दलित महिलाओं को शिक्षित बनाना। उन्होंने लड़कियों के लिये १८४८ से १८५१ तक अठारह स्कूल खोले। वे नारी मुक्ति आंदोलन की पहली महिला नेता थी। २८ जनवरी १८५३ को उन्होनें गर्भवती बलात्कार पीड़ितों के लिये बाल स्त्रियाँ प्रतिबंधित गृह की स्थापना की। सावित्रीबाई अपने पति महात्मा फुले के कंधे से कंधा मिलाकर कार्य करती थी। जो दलितों और मुसलमानों के गहरे संबंध की ओर इशारा करती है। फातिमा शेख उनकी सहयोगी शिक्षिका थी। उनका स्पष्ट मत था कि ''शिक्षा का मार्ग ही मुक्ति का मार्ग है।'' डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ने भी फुले दम्पति के जीवन और विचारों से प्रेरणा ली और महात्मा फुले को अपना गुरू माना था।

सावित्रीबाई कर्मकाडिंयों के खिलाफ थी। वे कहती थी, बिना पुरोहितों के भी शादी-विवाह हो सकता है। जिसका लोगों ने विरोध किया। वे अदालत भी गये परंतु सावित्रीबाई अपने पथ पर अड़ी रहीं। जो वर्तमान में भी पंजीकृत विवाह के रूप में आज भी दिखाई देता है। एक बार सावित्रीबाई के भाई ने उन्हें पत्र लिखा ''तुम जो काम कर रही हो, वह समाज को भ्रष्ट करने वाला है। सावित्री बाई ने जवाब दिया ''तुम तो बकरी, गाय को सहलाते हो। नागपंचमी पर नाग को दूध पिलाते हो, लेकिन दलितों को तुम इंसान नहीं, अछूत मानते हो।

२४ सितम्बर १८७३ ई. में महात्मा फुले ने 'सत्यशोधक समाज' की स्थापना की। सत्यशोधक समाज ने समता सिद्धांत पर आधारित समाज निर्माण करने का कार्य किया। उन्होंने छुआ-छूत प्रथा का विरोध किया। साथ ही बहुजन समाज की शिक्षा तथा स्त्री शिक्षा का उन्होंने समथर्न किया। जिसमें सावित्रीबाई फुले की

अहम् भूमिका थी। सावित्रीबाई फुले ने आत्महत्या करने जाती हुई एक विधवा ब्राम्हण महिला काशीबाई की अपने घर में डिलीवरी करवाकर उसके बच्चे यशवंत को अपने दत्तक पुत्र के रूप में गोंद लिया। यही नहीं उसे पाल पोस कर उन्होनें डॉक्टर बनाया और बिना किसी पुरोहित के उसका विवाह किया।

सावित्रीबाई एक प्रखर वक्ता एवं कवयित्री थी। उनकी एक बहुत प्रसिद्ध कविता है, जिसमें वह सब को पढ़ने-लिखने की प्रेरणा देकर जाति तोड़ने और ब्राम्हण ग्रंथों को फेंकने की बात करती है। काम करो, ज्ञान और धन इकठ्ठा करो। ज्ञान के बिना सब खो जाता है। ज्ञान के बिना हम जानवर के समान होते है। कड़ी मेहनत करो। अच्छे से पढ़ाई करो और अच्छा काम करो।

उन्हें मराठी काव्य का अग्रदूत भी माना जाता है। उन्होंने 'काव्य फुले' व 'सुबोध रत्नाकर' दो कविता संग्रह लिखा था। १८९७ में पुणे में प्लेग की महामारी फैली। प्लेग से लोगों को बचाने के लिए उन्होंने अपने दत्तक पुत्र यशवंत को बुलाया तथा उसकी मदद से प्लेग के मरीजों की सहायता में जुट गईं। वे जानती थीं कि यह एक संक्रामक रोग है फिर भी हिम्मत न हारी प्लेग ने धर दबोचा। जिसके कारण १० मार्च १८९७ को वे भारत माता की गोद में सदा-सदा के लिए चिरनिंद्रा में शिक्षा का अलख जगाकर सो गईं।

उन्होंने जमाने को अपने विचारों से बदला था। वे पूरे देश की महानायिका एवं क्रांति ज्योति थी।

बहुमुखी प्रतिभा के धनी लोकमान्य तिलक

''स्वराज मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और मैं उसे लेकर ही रहूंगा।'' सिंह गर्जना करने वाले बाल गंगाधर तिलक जी का जन्म महाराष्ट्र के कोकण प्रदेश में रत्नागिरी के चिकल गांव में २३ जुलाई १८५६ को हुआ था। उनके पिता का नाम गंगाधर पंत तथा माता का नाम पार्वती बाई था। उनके पिता गंगाधर रामचंद्र तिलक एक धर्म निष्ठ ब्राह्मण थे। अपने परिश्रम के बल पर विद्यालय के मेधावी छात्रों में बाल गंगाधर तिलक की गिनती होती थी। उनका प्रिय विषय गणित था। वे पढ़ने के साथ-साथ प्रतिदिन नियम से व्यायाम भी करते थे, जिसके कारण उनका शरीर स्वस्थ और पुष्ट था। बचपन से ही तिलक अन्याय के घोर विरोधी थे और अपनी बात बिना हिचक साफ-साफ कहते थे। जब बालक तिलक महज १० साल के थे तब उनके पिता जी का स्थानांतरण रत्नागिरी से पुणे हो गया। इस तबादले से उनके जीवन में भी बहुत परिवर्तन आया। उनका दाखिला पुणे के एक एग्लोवर्नाकुलर स्कूल में हुआ और उन्हें उस समय के जाने-माने शिक्षकों द्वारा शिक्षा प्राप्त हुई। पुणे आने के तुरंत बाद उनके मां का देहांत हो गया और जब तिलक १६ साल के थे तब उनके

पिता भी चल बसे। तिलक जब मैट्रिकुलेशन में पढ़ रहे थे उसी समय उनका विवाह एक १० वर्षीय कन्या सत्यभामा से करा दिया गया। तिलक बचपन से ही विवाह के अवसर पर चलने वाले दहेज का विरोध करते थे। विवाह के अवसर पर जब दहेज की बात चली तब तिलक ने स्वयं अपने ससुर से दहेज के बदले में पढ़ने के लिए पुस्तकें मांगी थीं। वे बचपन से ही बड़े साहसी थे। कहते हैं कि एक बार छात्रावास के छज्जे पर कुछ विद्यार्थी बैठे हुए थे। उनके साथ तिलक भी बैठे थे। छात्रों में इस बात की चर्चा हो रही थी कि यदि इस स्थान से तीव्रता से भागना पड़े तो कौन क्या करेगा? सभी सहपाठी अपनी-अपनी योजना बताने में लगे थे। जब तिलक की बारी आयी तो उन्होंने अपनी धोती समेटी और यह करूंगा कहते हुए छत से नीचे कूद गए। सभी साथी अवाक रह गए और चिंतित होकर नीचे की ओर भागे कि कहीं तिलक के हाथ पैर न टूट गए हो।लेकिन जब साथी लोग सीढ़ियां उतर रहे थे, तब तिलक उन्हीं सीढ़ियों से ऊपर चलें आ रहे थें। यह था उनका अदम्य साहस।

तिलक के अंदर बचपन से ही ईमानदारी के गुण कूट-कूट कर भरे थे। एक परीक्षा में तिलक ने सभी सवालों के सही जवाब लिख डालें। जब रिजल्ट आया तो उन्हें अपनी कक्षा में सर्वोच्च स्थान मिला। जब सर्वोच्च स्थान का पुरस्कार देने के लिए स्कूल के हेडमास्टर आगे बढ़े तो तिलक रोने लगे। मास्टरजी को आश्चर्य हुआ।उन्होंने रोने का कारण पूछा। तब तिलक ने बताया कि मैंने सभी सवाल अपनी मेहनत से सही नहीं किए हैं। एक सवाल का जवाब मैंने अपने सहपाठी से पूँछा था। अतः मैं पुरस्कार का हकदार नहीं हूं। हेड मास्टर ने उन्हें फिर भी यह कहते हुए पुरस्कार दिया कि यह पुरस्कार तुम्हारी ईमानदारी के लिए है।

तिलक सत्यवादी और निडर भी थे। जब तिलक छोटी कक्षा में थे तब एक दिन कक्षा में अध्यापक ना होने के कारण

कुछ बच्चों ने मूंगफली खाई और उसके छिलके कक्षा में ही बिखेर दिए। जब अध्यापक कक्षा में आए तब वे कक्षा में गंदगी देखकर भड़क गए। उन्होंने पूछा, यह गंदगी किस बच्चे ने फैलाई है? किसी बच्चे ने जवाब नहीं दिया। अध्यापक और क्रोधित हुए। उन्होंने पूरी कक्षा के बच्चों को खड़ा करके दंड देना शुरू किया। वे सबके हाथों पर बेंत मार रहे थे। जब बेत का नंबर तिलक तक आया तो वे बोले, ''जब मैंने न मूंगफली खाई है और न छिलके बिखेरे हैं तो मैं दंड क्यों सहन करूं?'' तब अध्यापक ने कहा- तो उस विद्यार्थी का नाम बताओ, जिसने यह छिलके फेकें हैं। तब तिलक निडरता से बोले ''मुझे चुगली करने की आदत नहीं है।'' अध्यापक ने इसे अनुशासनहीनता माना। शिकायत पिता गंगाधर तक पहुंची। उन्होंने अपने पुत्र का पक्ष लेते हुए कहा ''मेरा पुत्र झूठ नहीं बोलता और वह बाजारू चीजें भी नहीं खाता है।''

सन १८७६ में तिलक ने बी.ए. की परीक्षा गणित विषय से प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। आगे चलकर उन्होंने पढ़ाई जारी रखते हुए १८७९ में एल.एल.बी. की परीक्षा पास की। सन १८८० में उन्होंने न्यू इंडिया स्कूल की स्थापना की। सन १८८१ में उन्होंने मराठा और केसरी अखबारों का प्रकाशन किया। सन १८९० में वे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस से जुड़े। अपने जीवन काल में वे पुणे म्युनिसिपल परिषद और बांम्बे लेजीस्लेचर के सदस्य और मुंबई यूनिवर्सिटी के निर्वाचित फेलो भी रहे। तिलक अपने लेखों में तीव्र और प्रभावशाली भाषा का प्रयोग कर देते जिससे पाठक जोश और देश भक्ति के भावना से ओतप्रोत हो जाते थे। लोगों को एकत्रित करने एवं अंग्रेजों के प्रति भय खत्म करने के लिए तिलक जी ने गणेश उत्सव को सार्वजनिक रूप में मनाने का निर्णय लिया और पहली बार अक्टूबर १८९४ में पुणे के शनिवार वाडा में गणपति उत्सव का आयोजन किया गया। जिसमें काफी संख्या में लोग एकत्रित हुए।

सन १८९७ में अंग्रेज सरकार ने तिलक पर भड़काऊ लेखों के माध्यम से जनता को उकसाने, कानून तोड़ने और शांति व्यवस्था भंग करने का आरोप लगाकर उन्हें डेढ़ साल की सश्रम कारावास की सजा सुनाई। सजा काटने के बाद तिलक १८९८ में रिहा हुए और स्वदेशी आंदोलन को शुरू किया। समाचार पत्रों और भाषणों के माध्यम से उन्होंने महाराष्ट्र के गांव-गांव तक स्वदेशी आंदोलन का संदेश पहुंचाया। उनके घर के सामने ही एक स्वदेशी मार्केट का आयोजन भी किया गया।

सन १९०६ में अंग्रेज सरकार ने तिलक को विद्रोह के आरोप में गिरफ्तार किया। सुनवाई के बाद उन्हें ६ साल की सजा सुनाकर मांडले जेल भेजा गया। जहां उन्होंने गीता रहस्य लिखा। ८ जून १९१४ को उन्हें जेल से रिहा किया गया। पत्रकारिता, शिक्षा और राजनीति की त्रिवेणी संगम कहे जाने वाले बाल गंगाधर तिलक एक महान शिक्षक, विख्यात पत्रकार, जननायक तथा स्वतंत्रता सेनानी थे। उन्हे भारतीय 'राष्ट्रवाद का भागीरथी' भी कहा जाता है। निर्धन और दलित वर्गों के प्रति उनकी आसीम सहानुभूति थी। तिलक जी राष्ट्रवाद के प्रणेता थे। उन्होंने कभी भी मुस्लिम या अन्य किसी संप्रदाय के प्रति वैमनस्य का परिचय नहीं दिया। उनका कहना था कि राष्ट्रीय हित में हिंदू और मुसलमान दोनों को कंधे से कंधा मिलाकर चलना चाहिए। तिलक जी को उग्र स्वभाव का माना जाता था। लेकिन स्वराज्य प्राप्ति के लिए उन्होंने हिंसा की कभी वकालत नहीं की।

बाल गंगाधर तिलक पारंपारिक सनातन धर्म को मानने वाले हिंदू थे। उनका अध्ययन गहरा और विशाल था। वे छुआछूत के प्रबल विरोधी थे। वे तो यहां तक कहते थे कि यदि भगवान भी छुआछूत का समर्थन करे तो मैं भगवान को भी मानने से इंकार कर दूंगा। वे बाल विवाह के विरोधी थे लेकिन विधवा विवाह के समर्थक थे।बाल गंगाधर तिलक को आधुनिक भारत का ''कौटिल्य'' माना जाता है। वे बड़े दूरदर्शी थे। उन्होंने १८९६ में

ही पूर्ण स्वराज की बात उठा दी थी तथा १९०७ में हिंदी को राष्ट्र भाषा बनाने पर बल दिया था।

बाल गंगाधर तिलक एक महान शिक्षक भी थे। शिक्षा के संबंध में उनके विचार उत्तम थे। तिलक जी ने तकनीकी शिक्षा पर जोर दिया था। वे कहते थे कि ''केवल पढ़ना-लिखना, सीख लेना ही शिक्षा नहीं है, शिक्षा वह है जो हमें जीविकोपार्जन के योग्य बनाएं, सच्चा नागरिक बनाएं और हमारे पूर्वजों का ज्ञान और अनुभव दें।'' उन्होंने राष्ट्रीय शिक्षा की आवश्यकता पर बल दिया। वे विद्यार्थियों को धार्मिक शिक्षा देने के पक्ष में थे। वे कहते थे कि ''जब तक कोई अपने धर्म को जानेगा नहीं तब तक उसे अपने धर्म पर अभिमान कैसे होगा?'' वे मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम बनाने की वकालत करते थे।

तिलक जी की राजनीतिक कर्मभूमि कांग्रेस थी।किंतु उन्होंने अनेक बार कांग्रेस की नीतियों का विरोध भी किया क्योंकि वे सत्य को डंके की चोट पर कहने में विश्वास रखते थे।

शिक्षा के संबंध में तिलक जी का कहना था कि अगर मुझे स्वराज मिल जाए तो मैं सर्वप्रथम शिक्षा को मुफ्त और अनिवार्य बना दूंगा। वे महिला शिक्षा के पक्षधर थे। वे कहते थे कि ''जब हमारे देश की महिलाएं शिक्षित होंगी तो उनकी संतान भी वीर, साहसी और ज्ञानवान होगीं।''

१३ अप्रैल १९१९ में जलियां वाला बाग हत्याकांड हुआ। तिलक जी इस हत्याकांड की क्रूर घटना से इतने निराश हुए कि उनका स्वास्थ्य धीरे-धीरे कमजोर होता गया। अपनी बीमारी के बावजूद भी तिलक जी भारतीयों को यही कहते रहते कि ''जो हुआ इससे आंदोलन पर कोई फर्क नहीं पड़ना चाहिए''। वे आंदोलन का नेतृत्व करने के लिए उत्साहित थे। लेकिन उनके स्वास्थ्य ने उन्हें अनुमति नहीं दी। १ अगस्त १९२० को भारत के महान सपूत सदा सदा के लिए चीर निंद्रा में लीन हो गए।

युवा युगपुरूष स्वामी विवेकानंद

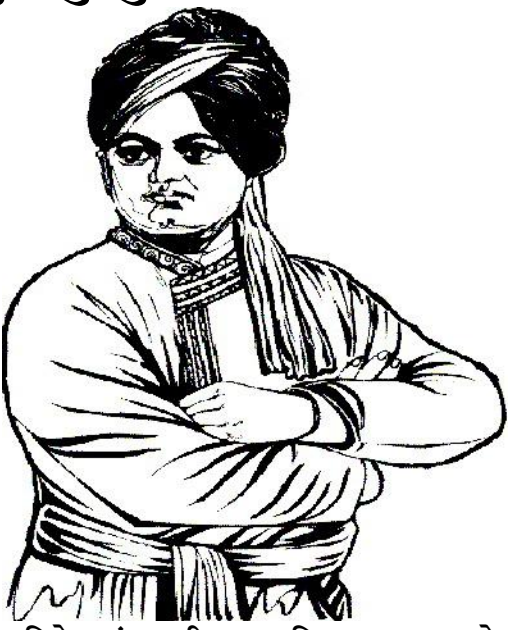

स्वामी विवेकानंद जी आधुनिक भारत के एक महान चिंतक, महान देशभक्त, दार्शनिक, युवा सन्यासी युवाओं के प्रेरणा स्त्रोत और एक आदर्श व्यक्तित्व के धनी थे। स्वामी विवेकानंद का जन्म १२ जनवरी सन् १८६३ को कलकत्ता में एक कायस्थ परिवार में हुआ था। उनके बचपन का नाम नरेन्द्र था। पिता विश्वनाथ दत्त पाश्चिमात्य सभ्यता में विश्वास रखते थे। वे अपने पुत्र नरेन्द्र को भी अंग्रेजी पढ़ाकर पश्चिमात्य सभ्यता के ढर्रे पर चलाना चाहते थे। परन्तु उनकी माता भुनेश्वरी देवी धार्मिक विचारों की महिला थीं। नरेन्द्र की बुद्धि बचपन से ही बड़ी तीव्र थी और परमात्मा को पाने की लालसा भी उनमें प्रबल थी। स्वामी विवेकानंद नवंबर १८८१ ई. में रामकृष्ण से मिले और उनके आंतरिक, अध्यात्मिक, चमत्कारी शक्तियों से नरेन्द्र इतने प्रभावित हुऐ कि वे उनके शिष्य बन गये। उन्होनें कलकत्ता में

रामकृष्ण मिशन तथा गंगा नदी के किनारे बेलूर में रामकृष्ण मठ की स्थापना की। ११ सितम्बर १८९३ को उन्होंने शिकागो के विश्व धर्म सम्मेलन में हिंदू धर्म पर प्रभावी भाषण देकर दुनिया भर में अध्यात्म का डंका बजाया था। उन्होंने जब सभी को भाईयों-बहनों कहकर संबोधित किया, तब काफी देर तक तालियाँ बजती रहीं।

स्वामी विवेकानंद के संबंध में एक बार सुभाष चंद्र बोस ने कहा था कि ''वे अति उच्च आध्यात्मिक उपलब्ध योगी थे, जिन्होंने सत्य का प्रत्यक्ष साक्षात्कार किया था एवं अपने जीवन को देश के नैतिक एवं आध्यात्मिक उन्नयन तथा समस्त मानवता के कल्याणार्थ समर्पित कर दिया था। मैं इन्ही शब्दों में उनका वर्णन करना पसंद करूँगा। यदि वे आज जीवित होते तो मैं उनके श्री चरणों में होता। कितना आगाध विश्वास था, नेताजी को स्वामी जी पर, देश में ही नहीं उन्होंने अपने कर्म योगी व्यक्तित्व से विदेशों में भी छाप छोड़ी थी। सन् १८९३ से १८९६ तक स्वामी जी ने अमेरिका में अपने ओजस्वी व्याख्यानों, प्रवचनों तथा उपदेशों द्वारा समस्त पाश्चात्य जगत को शिक्षा दी, जिससे विलियम जेम्स, अमेरिकी दार्शनिक रूसी पुरूष स्टाईल, जर्मनी वेदांती ऑल टायसन तक प्रभावित हुये बिना न रह सके। यह देखकर समस्त भारतवर्ष का सीना गर्व से फूल उठा था। उनका एक मंत्र था, उठो! जगो, स्वयं जलगकर औरों को जगाओ। वे कहते थे, उठो साहसी बनों, सब उत्तरदायित्व अपने कंधो पर लो, यह याद रखो कि तुम स्वयं अपने भाग्य के निर्माता हो। तुम जो कुछ बल या सहायता चाहो, सब तुम्हारे भीतर ही विद्यमान है।

स्वामी जी अमेरिका, यूरोप आदि जहाँ भी गये, जिसने भी उनके व्यक्तित्व, कृतित्व को अंश मात्र भी पा लिया वह उनके प्रति समर्पित हो गया तथा उनको अपना सर्वस्व मानने लगा। भारत के प्रत्येक वर्ग का उन्होंने सपना देखा था। भारत की खोई प्रतिष्ठा को जगाने के लिये उसे पुनः विश्व पटल पर स्थापित करने के लिये वे अमेरिका गये थे। कोई भी बाधा उनके आध्यात्मिक मार्ग में अवरोध न बन सकी। उनके जीवन का निर्माण ही बाधाओं पर विजय प्राप्त करना था। उनका कहना था कि ''गरीब लोगों के दरवाजे पर जाओ और उनकी मदद करो।'' वे बचपन से ही समाज की रूढ़िवादिता के खिलाफ थे। वे जातिवाद एवं छुआछूत से कोसों दूर थे।

भारत भ्रमण के समय बनारस में एक दिन कुछ बंदर उनके पीछे पड़ गये, वे भागने लगे। उसी समय एक सन्यासी ने चिल्लाकर कहा, ठहरों, डटकर सामना करों। वे ठहरे और मुड़कर निर्भयता पूर्वक बंदरों की ओर देखा। उनके खड़े होते ही बंदर सिर पर पांव रख कर भाग गये। यह घटना उनके जीवन के निर्माण का आधार बन गयी। उसके बाद जहाँ भी उन्होंने अपने कदम रखा या बढ़ा दिया कभी पीछे नहीं हटे। वे संघर्ष करते हुये नरेंद्र से स्वामी विवेकानंद बन गए।

स्वामी विवेकानंद की वाणी से निकला एक-एक शब्द देशप्रेम, मानवता सेवा, नैतिकता एवं आत्मविश्वास से युक्त होता था। वे कहते थे, कि ''मानव सेवा ही सच्ची ईश्वर सेवा है, क्योंकि मानव ईश्वर का अंश है''। उन्होंने निर्धनता को अभिशाप मानते हुये कहा था, ''गरीब लोग इतने बेहाल है कि वे स्कूलों और पाठशालाओं में नहीं जा सकते, याद रखो राष्ट्र झोपड़ी में

बसा है।'' उनके भाषण का प्रभाव महात्मा गाँधी, बिपिन चंद्रपाल, बाल गंगाधर तिलक और सुभाष चंद्र बोस पर व्यापक रूप से पड़ा था। वे कहते थे, ''किसी भी देश के युवा उसका भविष्य होते हैं। उन्हीं के हाथों में देश के उन्नति की बागडोर होती हैं।'' आज के परिदृश्य में जहाँ चहुँ ओर भ्रष्टाचार, बुराई, अपराध का बोल-बाला है, जो घुन बनकर देश को अंदर ही अंदर खाये जा रहे हैं, ऐसे में युवा शक्ति को जागृत करना अत्यंत आवश्यक है।

स्वामी विवेकानंद के विचारों में वह क्रांति और तेज था जो सारे युवाओं को नई चेतना से भर दे। उनके दिलों को भेद दे। उनमें नई ऊर्जा और सकारात्मकता का संचार कर दे। वे युवाओं के प्रेरणा स्त्रोत थे। उनका जन्मदिवस ''राष्ट्रीय युवा प्रेरणा दिवस'' के रूप में मनाया जाता है।

४ जुलाई को बेलूर में रामकृष्ण मठ में उन्होंने ध्यानमग्न अवस्था में महासमाधि धारण कर प्राण त्याग दिए। आज भी उनका जीवन इस देश व विश्व के लिये उतना ही प्रेरणास्पद है, जितना कि उनके समय में रहा होगा। स्वामी विवेकानंद अपनी आध्यात्मिक सोच के साथ पूरी दुनिया को वेंदो और शास्त्रों का ज्ञान देकर गये।

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी एवं शिक्षा

''शिक्षा आत्मा की रोटी है।'' कहने वाले मोहन दास करमचंद गाँधी का जन्म २ अक्टूबर १८६९ को गुजरात के काठियावाड़ जिले के पोरबंदर नामक स्थान पर हुआ था। उनकी प्राथमिक शिक्षा राजकोट पाठशाला में हुई। उच्च शिक्षा ग्रहण करने के लिए वे लंदन गए। १८९१ ई. में बैरिस्टर की परीक्षा उत्तीर्ण कर भारत लौटे।

विदेश में शिक्षा लेने के बावजूद वे विदेशी शिक्षा के पक्षधर नहीं थे। वे कहते थे, ''विदेशी भाषा के माध्यम से सही शिक्षा संभव नहीं है। विदेशी भाषा हृदय और हाथ की संस्कृति की उपेक्षा कर पूर्वतः दिमाग तक ही सीमित रहती है।'' वे भारतीय परिवेश से पूर्ण रूप परिचित थे। विदेश प्रवास के दौरान भी वे अंग्रेजी शिक्षा पद्धति एवं नीति की सार्थक चर्चा अपने मित्रों से कभी-कभी करते रहते थे। गाँधी जी ने अंग्रेजी शिक्षा को मानसिक गुलामी का कारण बताया था। वे कहते थे, ''अंग्रेजी शिक्षा लेकर हमने अपने राष्ट्र को गुलाम बनाया है।''

महात्मा गाँधी ने शिक्षा की परिभाषा करते हुए कहा था कि ''शिक्षा से मेरा अभिप्राय बालक तथा मनुष्य में निहित शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक श्रेष्ठतम शक्तियों का अधिकतम

विकास है।'' ग्रामीण प्रौढ़ शिक्षा के बारे में अपने विचार स्पष्ट करते हुए गाँधी जी का कहना था कि लोगों को अपने दिमाग से इस वहम को निकालने की जरूरत है कि देहात के बड़ी उम्र के सभी मनुष्य अक्षर ज्ञान पाकर ही शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं। जिनमें शक्ति एवं उत्साह हो उन्हें अक्षर ज्ञान कराने का प्रयत्न करना इष्ट है। उन्हें प्रोत्साहन देना चाहिए और उनके लिए पूरी सुविधा भी करनी चाहिए। परंतु बहुत से मनुष्यों को बड़ी उम्र में लिखना-पढ़ना सीखने में रस आना कठिन है, अतः ऐसा नहीं होना चाहिए। ऐसे लोग पौढ़ पाठशालाओं में आए ही नहीं बल्कि जो पढ़े वह दूसरों को पढ़ाकर सिखाये और समझाये तथा उनके लिए व्यख्यान वगैरह की व्यवस्था करें। केवल पढ़ना-लिखना आने से समझने की शक्ति बढ़ती है, ऐसी बात नहीं है। अक्सर बुद्धिमान देहाती सुनकर जो ज्ञान पा लेता है, वह पढ़े हुए आदमी की अपेक्षा अधिक होता है। ज्ञान का मूल स्रोत पुस्तकों में नहीं है बल्कि अवलोकन, अनुभव एवं विचार शक्ति में है। वे तो मात्र सूचना सामग्री का संकल्प होती है, इसी अज्ञानता के कारण पुस्तक ज्ञानी को लोग बहुत महत्व देते हैं।

वे यह भी जानते थे, कि यदि प्रौढ़ अवस्था में अक्षर ज्ञान देकर लोगों को साक्षर किया जाएगा, तो कई दशक लग जाऐंगे, अक्षर ज्ञान का विरोध न करते हुए उन्होंने कहा अक्षर ज्ञान के बिना भी शिक्षा दी जा सकती है और दी जानी चाहिये। लिखने-पढ़ने का ज्ञान न होते हुए भी मनुष्य गिनना सीख सकता है, अपने उद्योग धंधे संबंधी प्राथमिक ज्ञान प्राप्त कर सकता है, साहित्य सुन सकता है। समझ सकता है और याद कर सकता है तथा शक्तिशाली हो तो रचना भी कर सकता है।

पश्चिमी शिक्षा ग्रहण करके पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित, भौतिकतावाद एवं उपभोक्तावादी संस्कृति का अंधानुकरण करने वाली जमात को गांधी जी ने बहुत नजदीक से देखा था। इससे अनेकानेक बुराईयों एवं मनुष्य की अत्यधिक अवनति का

साक्षात्कार किया था। अतः उन्होंने धार्मिक शिक्षा को शिक्षा के एक अनिवार्य अंग के रूप में प्रतिष्ठापित करने की वकालत की। प्रत्येक बालक को जिस धर्म में वह जन्मा हो, उस धर्म की मुख्य ग्रंथों महापुरुषों और संतों तथा उस धर्म के मतों का श्रृद्धा-पूर्वक ज्ञान करा देना चाहिए। यहाँ धर्म का अर्थ वैदिक, ईस्लाम, ईसाई, यहूदी, पारसी, सिख, जैन, बौद्ध इत्यादि मुख्य धर्म ही समझना चाहिए। उनके संप्रदाय या उप शाखाओं का समावेश उसमें नहीं होना चाहिए।

अतः जो चित्त को शुद्ध न करें और इंद्रियों को वश में रखना न सिखाए, निर्भयता और स्वालंबन पैदा न करें, निर्वाह का साधन न सिखाये और गुलामी से छूटने और आजाद रहने का हौसला और सामर्थ्य न जगाऐ, ऐसी शिक्षा व्यर्थ है। उस शिक्षा में चाहे जितनी जानकारी का खजाना, तार्किक कुशलता और भाषा पंडित्य मौजूद हो वह शिक्षा नहीं है या अधूरी शिक्षा है। महात्मा गांधी का स्पष्ट मत था, कि साक्षरता न तो शिक्षा का अंत है, न प्रारंभ। देश के सबसे उपेक्षित वर्ग-नारी समाज को शिक्षित करने की उन्होंने पुरजोर कोशिश की। उनका कहना था, कि परिवार, समाज एवं देश की उन्नति एवं स्वास्थ्य विकास के लिए शिक्षित होना अति आवश्यक है।

पुरुष को जैसे शिक्षा पाने की अनुकूलता है वैसी ही अनुकूलता स्त्री को भी होनी चाहिए, जिसका परिणाम हम आज वर्तमान में देख रहे हैं। आज किसी भी क्षेत्र में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ कम नहीं है। गाँधी जी के अनुसार राष्ट्रीय शिक्षा की व्यवस्था कैसी होनी चाहिए? उसका प्रारूप इस विचार को सामने रखकर बनाना चाहिए, कि भारत में ८० प्रतिशत लोग प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से खेती से गुजारा करते हैं। शिक्षा से निर्वाह का प्रश्न हल होना चाहिए, उद्योग धंधों की शिक्षा-शिक्षण का प्रधान अंग होना चाहिए। जनता के निर्वाह का मसला हल किये बिना संस्कार या ईश्वर को ज्ञान देने वाली शिक्षा की बात करना बेकार

है। सच भी है ''भूखे भजन न होय गोपाला", जब जेब में पैसा है, पेट में रोटी है, तो हर शबनम मोती होती है, जैसी उक्तियाँ गाँधी जी के कथन का पुरजोर समर्थन करती हैं। वे चाहते थे कि शिक्षा ऐसी होनी चाहिए, जो लोगों को रोजगार दे सके, जिसमें नैतिक शिक्षा का पूर्ण समावेश हो। ६ वर्ष से १४ वर्ष तक के बालकों को मुफ्त में शिक्षा मिलनी चाहिए, इसके वे पक्षधर थे, जो आज विद्यालयों में दी जा रही है।

सुंदर लिखावट को विद्यार्थियों का वे अलंकार मानते थे। नकल से कोसों दूर रहकर उन्होंने शिक्षा ग्रहण की। उनका मानना था, कि प्रारंभिक शिक्षा मातृभाषा के माध्यम से ही होनी चाहिए। महात्मा गाँधी का व्यक्तित्व और कृतित्व आदर्शवादी रहा है। उनका आचरण प्रयोगवादी विचारधारा से ओतप्रोत था। संसार के अधिकांश लोग उन्हें महान राजनीतिज्ञ एवं समाज सुधारक के रूप में जानते हैं। अतः इस प्रकार देखा जाए तो गाँधीजी के शिक्षा संबंधी विचार यथार्थवादी परिस्थिति एवं समयानुकूल थे, जो कि एक औपनिवेशिक शासन से स्वतंत्रता के संवाहक एवं स्वालंबन के प्रतीक थे। जो कि आज भी प्रासंगिक हैं। हाँ समयानुसार इसमें परिमार्जन एवं परिवर्धन किया जा सकता है और किया भी जा रहा है।

महात्मा गाँधी के अहिंसा नीति की प्रासंगिकता

''लाखों करोड़ों गूँगों के हृदयों में जो ईश्वर विराजमान है, मैं उसके सिवा अन्य किसी ईश्वर को नहीं मानता। वे उसकी सत्ता को नहीं जानते, मैं जानता हूँ, मैं इन लाखों करोड़ों की सेवा द्वारा उस ईश्वर की पूजा करता हूँ, जो सत्य है अथवा उस सत्य की जो ईश्वर है।" यह महान विचार किसी और के नहीं बल्कि उस महामानव के हैं, जिन्हें राष्ट्र, राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के नाम से जानता है। व्यक्तित्व की दृष्टि से विचार करें तो गाँधीजी राजनीतिज्ञ, दार्शनिक, सुधारक, अर्थशास्त्री एवं क्रांतिकारी थे। वे कहते थे, हमें आजादी हिंसा से नहीं बल्कि अहिंसा से प्राप्त करनी है। वे हिंसा के खिलाफ थे। उन्हें अहिंसा का पुजारी भी कहा जाता है। यही कारण था कि कवि प्रदीप जी ने लिखा– ''दे दी हमें आजादी बिना खड्ग बिना ढाल, साबरमती के संत तूने कर दिया कमाल''। महात्मा गाँधी ने अहिंसा को व्यापक

विचारधारा मानकर अपने जीवन में व्यवहारिक प्रयोग किया था। गाँधी-दर्शन के अनुसार अहिंसा का पुजारी वह होगा, जो सूक्ष्म से सूक्ष्म जंतु का नाश न चाहे और यथाशक्ति उसे बचाने का प्रयास करें। वस्तुतः हमारे द्वारा किसी को शारीरिक एवं मानसिक आघात न पहुँचे और किसी की भावनाओं को भी ठेस न पहुँचे। यही महात्मा गाँधी का अहिंसा का मूल मंत्र था, जो वर्तमान परिस्थितियों में प्रसांगिक है।

प्राचीन भारत में साम्यवाद की विचारधारा अहिंसा की नींव पर ही आधारित रही। हिंसा के द्वारा समाज में समानता लाने का विचार भारतीय संस्कृति में कदापि घोषित नहीं हुआ। भारतीय संस्कृति त्याग, सहिष्णुता, शांति और अहिंसा की परम्पराओं से सिंचित हुआ और यहाँ अहिंसा को ही परम धर्म माना गया। जो अंतर्राष्ट्रीय शांति-सेना की बुनियादी हिंसात्मक सिद्धांतों पर आधारित है। वस्तुतः छोटे देशों को बड़े देशों के प्रमुख प्रभुत्व से अहिंसात्मक नीति के अनुकरण से ही बचाया जा सकता है।

अहिंसात्मक नीति में कूटनीति एवं राजनीतिक दांवपेच का स्थान नहीं होता है। अहिंसा के सिद्धांतों का पालन करने में साधनों की पवित्रता पर दृष्टि रखना वांछनीय है। भारत-चीन सीमा विवाद अभी भी बना हुआ है क्योंकि चीन अपनी कूटनीति से इस समस्या को हल करना चाहता है। यदि दूसरे पक्ष के विरोध में संदिग्ध हो तो हमारा भी कर्तव्य हो जाता है कि हम आत्मरक्षा के प्रवृत्त हो और अन्याय का प्रतिवाद करें।

गत वर्षों में ऐसी परिस्थितियों में अहिंसा की भूमिका केवल इतनी होगी की लड़ाई को जहाँ तक संभव हो सके टाला जाए। किंतु सीमाओं की रक्षा प्रत्येक कीमत पर हमें करनी होगी।

अहिंसा हमें कायर बनाए, कदापि ईष्ट नहीं। सत्य, प्रेम, व करुणा से मुक्त होकर हम मानव मात्र के कल्याण के लिए अग्रसर हो यही विचारधारा हमारे अहिंसा-दर्शन का आधार बने। वर्तमान युग का विश्व मानव पाशविक सभ्यता की ओर अग्रसर होकर अपने को गौरवान्वित महसूस करता है। उत्तर कोरिया का उदाहरण हमारे सामने है। जहाँ का तानाशाह परमाणु शक्ति को बढ़ाकर युद्ध की धमकी देने में अपनी शान समझता है। वर्तमान काल में मानव पाशविक सभ्यता की ओर बढ़ने के लिए आतुरता पूर्वक ललायित है। जहाँ आतंकवादी बलशाली को ही जीने का अधिकार माना जाने लगा है और प्रभुत्व संपन्न राष्ट्र दूसरे का आर्थिक एवं राजनीतिक शोषण करना जन्म सिद्ध अधिकार मानता है। ऐसी परिस्थितियों में गाँधी जी की अहिंसा नीति प्रकाश-स्तम्भ की तरह पथ प्रदर्शित करती है। निश्चय ही अहिंसा का संदेश देने वाली भारत की पवित्र भूमि विघटनकारी परिवर्तन के दौर से गुजर रही है।

जहाँ तक आतंकवाद, नक्सलवाद, संकीर्ण साम्प्रदायिकता, निजी स्वार्थ देश के विकास में बाधा बने हुए हैं। हिंसा का वातावरण जहाँ सांप्रदायिक तनाव, जातीय द्वेष को बढ़ाने में सहायक होता है, वहीं हिंसात्मक घटनायें देश की उन्नति में बहुत अधिक बाधक बनी हुई हैं। भारत में छत्तीसगढ़ का नक्सलवाद से प्रभावित क्षेत्र इसका ज्वलंत उदाहरण हमारे सामने हैं। जहाँ घात लगाकर सुरक्षाकर्मियों को मौत के घाट उतार देने की घटनायें यदा-कदा हमारे सामने आती हैं। कश्मीर में तलाशी के दौरान सुरक्षा बलों पर की गई पत्थरबाजी हिंसक घटनाओं का प्रमाण है।

वास्तव में उसी व्यक्ति का जीवन समाजोपयोगी कहा जाएगा, जो दूसरों के सुख-दुःख को ध्यान में रखकर कार्य करें।

अहिंसा में एक महान शक्ति, संयम, धैर्य और सहिष्णुता की अनुकरणीय भावना छिपी हुई है। अहिंसा हमें निर्भय एवं विनीत बनाती है, कायर नहीं। महात्मा गाँधी साहसी एवं निडर थे। वे हमेशा हिंसात्मक घटनाओं का विरोध करते थे। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के लिए परोपकार से बढ़कर कोई सेवा नहीं थी और मानवता से कोई धर्म नहीं था। परंतु यह हमारा दुर्भाग्य था कि ३० जनवरी १९४८ को नाथूराम गोड़से ने राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी की गोली मारकर हत्या कर दी। जब गाँधी जी को गोली मारी गई तब उनके मुख से निकलने वाले आखिरी शब्द थे ''हे राम"! महात्मा गाँधी भले ही आज हमारे बीच जीवित न हो, लेकिन वर्तमान संदर्भ में उनकी अहिंसा नीति आज भी प्रासंगिक है।

एकता और अखण्डता के अग्रदूत
सरदार वल्लभभाई पटेल

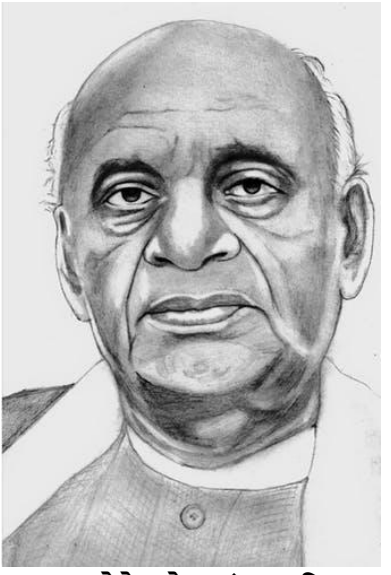

गुजरात के एक छोटे से गांव नडियाद में ३१ अक्टूबर १८७५ के दिन स्वतंत्रता सेनानी वल्लभभाई पटेल का जन्म हुआ। उनकी माता का नाम लाडबा देवी एवं पिता का नाम झावेर भाई था। पिताजी किसान थे। पटेल अपने माता-पिता की चौथी संतान थे। पटेल की प्रारंभिक शिक्षा नडियाद, बड़ौदा व अहमदाबाद में हुई। १८९६ में उन्होंने हाईस्कूल की परीक्षा नडियाद शहर की एक हाई स्कूल से उत्तीर्ण की। पटेल बचपन से ही साहसी और कुशाग्र बुद्धि के थे। उनके कांख में एक फोड़ा हो गया था। जो बड़ा होता जा रहा था। उनके यहां बाल काटने के लिए एक नाई आया करता था ।उसने पटेल से कहा इस फोड़े को गर्म लोहे से चीरना होगा तभी वह ठीक हो सकता है। पटेल तुरंत तैयार हो गए ।नाई ने लोहा गर्म किया परंतु उसे फोड़े को छुआने की हिम्मत नहीं हुई। पटेल ने स्वंय गर्म लोहा लिया और फोड़े को फोड़ दिया। इतने साहसी थे वल्लभभाई पटेल।

घर की आर्थिक स्थिति ठीक ना होने के कारण हाई स्कूल के बाद ३ वर्ष तक वे खेत में पिताजी के कामों में मदद करते रहे।उन्होंने किसानों की स्थिति बहुत नजदीक से देखी थी। जिसके कारण उन्होंने किसानों के दर्द के लिए कुछ ना कुछ कर गुजर गुजरने का मन ही मन संकल्प कर लिया था। वे जानते थे बिना उच्च शिक्षा के कुछ नहीं किया जा सकता है। वे वकील बनना चाहते थे। इसके लिए पैसे ना होने पर वे अपने परिचित वकीलों से पुस्तक मांग कर पढ़ने लगे। कठोर परिश्रम करके उन्होंने वकालत की परीक्षा सफलतापूर्वक पूर्ण करने के बाद अपनी वकालत शुरू की।

एक वकील के रूप में रहकर पटेल कमजोर से कमजोर मुकदमों को सटीकता से प्रस्तुत करते और पुलिस गवाहों तथा अंग्रेजों को चुनौती देकर फैसला अपने पक्ष में कर लेते थे। उनकी वकालत काफी चली।पैसे भी खूब मिल रहे थे किन्तु हृदय में देशभक्ति का जज्बा था इसलिए वकालत छोड़कर देश सेवा के कार्य में लग गए। गांधीजी के चंपारण सत्याग्रह से वे काफी प्रभावित थे। १९१७ में पहली बार वे गांधी जी के सीधे संपर्क में आए। १९१८ में गुजरात के खेड़ा खंड में सूखा पड़ा। किसानों ने सरकार से करों से राहत की मांग की।लेकिन ब्रिटिश सरकार मानने को तैयार नहीं हुई। गांधी जी ने किसानों का मुद्दा उठाया पर वे अपना पूरा समय खेड़ा खंड के लिए नहीं दे सकते थे। उन्होंने यह जिम्मेदारी पटेल को दी। जिन्होंने उसे स्वेच्छा से स्वीकार कर लिया। ब्रिटिश सरकार को पटेल के आगे घुटने टेकने पड़े। इस सत्याग्रह के बाद पटेल राष्ट्रीय स्तर पर उभरकर सामने आए। १९२० के असहयोग आंदोलन में सरदार पटेल ने स्वदेशी खादी धोती, कुर्ता, चप्पल को अपनाया। एक विदेशी कपड़ों की होली जलाई। १९२१ में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अहमदाबाद अधिवेशन के स्वागत समिति के अध्यक्ष चुने गए।

१९२२, १९२४, १९२७ में अहमदाबाद के नगर निगम के अध्यक्ष चुने गए।

सन १९२८ में गुजरात के बारडोली तालुका में बाढ़ आई। ब्रिटिश सरकार ने किसानों पर ३०% कर और बढ़ा दिया। पटेल किसानों के समर्थन में उतरे और गवर्नर के इस करों को कम करने की गुहार लगाई। गवर्नर ने उनकी एक न सुनी और सरकार ने कर वसूलने की तारीख की घोषणा कर दी। पटेल ने किसानों को एकत्रित किया एवं किसानों को एक भी पैसा देने के लिए मना कर दिया। सरकार ने इस आंदोलन को दबाने की कोशिश की परंतु वह विफल रही ।बारडोली के इस जीत से पटेल का कद और बढ़ गया। वहां की महिलाओं ने वल्लभ भाई पटेल को सरदार की उपाधि प्रदान की।

१९३० में 'नमक सत्याग्रह' के दौरान उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। जिससे पूरे गुजरात में आंदोलन अधिक तीव्र हो गया है, जिसके कारण ब्रिटिश सरकार गांधी और पटेल को रिहा करने के लिए मजबूर हो गई। इसके बाद मुंबई में उन्हें फिर गिरफ्तार किया गया। १९३१ में गांधी डरविन समझौता पर हस्ताक्षर करने के पश्चात पटेल को जेल से रिहा किया गया। अगस्त १९४२ में कांग्रेस ने 'भारत छोड़ो आंदोलन' आरंभ किया। ब्रिटिश सरकार ने पटेल सहित कई नेताओं को कारावास में डाल दिया। सारे नेताओं को तीन वर्ष बाद छोड़ दिया गया।

१५ अगस्त १९४७ को स्वतंत्रत भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू और सरदार पटेल उपप्रधानमंत्री बने। इसके अतिरिक्त वे गृह मंत्रालय, सूचना एवं प्रसारण और राज्यों के मंत्रालय के प्रभारी भी थे। आजादी के समय भारत में कुल ५६५ रियासतें थीं। जब अंग्रेजों ने भारत छोड़ा तब वे स्वतंत्र शासक बनने का सपना देख रहे थे। उन्होंने तर्क दिया कि स्वतंत्र भारत की सरकार उन्हें बराबरी का दर्जा दे। उनमें से कुछ लोग तो संयुक्त राष्ट्र संगठन को अपना प्रतिनिधि भेजने की योजना बनाने

की हद तक चले गए। पटेल ने राज्यों को आव्हान किया और उनसे कहा कि विदेशी भी स्वतंत्रता से जुड़े और एक जिम्मेदार शासक की तरह बर्ताव करें जो सिर्फ अपनी प्रजा के भविष्य की चिंता करते हैं। उन्होंने ५६५ रियासतों के राज्यों को स्पष्ट कर दिया कि अलग राज्य का उनका सपना असंभव है और भारतीय स्वतंत्रता गणतंत्र का हिस्सा बनने में ही उनकी भलाई है। इसके बाद उन्होंने महान बुद्धिमत्ता और राजनीतिक दूरदर्शिता के साथ छोटी रियासतों को संगठित किया। उनके इस पहल में रियासतों की जनता भी उनके साथ थी। उन्होंने हैदराबाद के निजाम शाह और जूनागढ़ के नवाब को काबू में किया जो प्रारंभ में भारत से नहीं जुड़ना चाहते थे। उन्होंने देश को बिना किसी रक्तपात के संगठित कर दिया। अपने इस विशाल कार्य की उपलब्धि के लिए सरदार पटेल को लौह पुरुष के नाम से जाना जाने लगा।

लौह पुरुष, स्वतंत्रता सेनानी किसान के शुभचिंतक सरदार पटेल का १५ दिसंबर १९५० को हृदय की गति रूक जाने के कारण देहांत हो गया। १९९१ में भारत सरकार ने उन्हें 'भारत रत्न' से नवाजा। वर्तमान सरकार ने सरदार पटेल के सम्मान में दुनिया की सबसे ऊंची प्रतिमा 'स्टेच्यू ऑफ यूनिटी' का निर्माण किया है। १८२ मीटर ऊंची प्रतिमा देश को एक सूत्र में पिरोने वाले इस महान नेता के लिए सम्मान का प्रतीक है। सरदार वल्लभ भाई पटेल का जन्म दिवस ''राष्ट्रीय एकता दिवस'' के रूप में मनाया जाता है।

कलम के सिपाही मुंशी प्रेमचंद

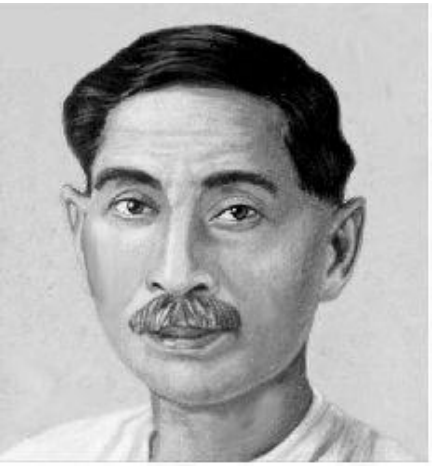

मनुष्य कितना भी हृदयहीन हो उसके हृदय के किसी ना किसी कोने में पराग की भांति रस छिपा ही रहता है। जिस तरह पत्थर में आग छिपी रहती है, उसी तरह मनुष्य के हृदय में भी चाहे वह कितना भी क्रूर क्यों ना हो, उत्कृष्ट और कोमल भाव छुपे रहते हैं। कहने वाले मुंशी प्रेमचंद आधुनिक काल के हिंदी और उर्दू के महानतम भारतीय लेखकों में से एक थे। उनका मूल नाम धनपत राय था। उन्हें नवाब राय और मुंशी प्रेमचंद के नाम से भी जाना जाता है। उनका जन्म ३१ जुलाई १८८० को लमही गांव, वाराणसी उत्तर प्रदेश में हुआ था। उनके पिताजी का नाम अजायब राय तथा माता का नाम आनंदी देवी था। प्रेमचंद जी एक छोटे और सामान्य परिवार में जन्म लिए थे

उनके पिताजी डाक मुंशी थे। उनका वेतन लगभग ₹२५ था। प्रेमचंद का बचपन गांव में बीता था।बचपन से ही उनका जीवन बहुत ही संघर्षों से गुजरा था। जब प्रेमचंद जी ८ वर्ष की उम्र के थे, तब उनकी माता जी का देहांत एक गंभीर बीमारी से हो गया। बहुत कम उम्र में ही माताजी के देहांत हो जाने के कारण उन्हें अपने माता-पिता का पूरा प्यार नहीं मिल पाया। पिताजी सरकारी नौकरी में होने के कारण अधिकांश समय उनका

बाहर ही चला जाता था। माताजी के देहांत के उपरांत उनके पिताजी का तबादला गोरखपुर हुआ और कुछ समय बाद पिताजी ने दूसरा विवाह कर लिया। सौतेली मां ने कभी प्रेमचंद को पूर्ण रूप से नहीं अपनाया। जब प्रेमचंद १५ वर्ष के थे उनका विवाह हो गया। वह विवाह उनके सौतेले नाना ने करवाया था। उनके पत्नी का नाम शिवरानी देवी था। शिवरानी देवी बाल विधवा थी। वे विधवा विवाह के समर्थक थे। उन्हें चापलूसी बिल्कुल पसंद नहीं थी। वे कहते थे ''चापलूसी का जहरीला प्याला आपको तब तक नुकसान नहीं पहुंचा सकता जब तक की आपके कान उसे अमृत समझकर पी न जाए।''

प्रेमचंद का बचपन से ही हिंदी के प्रति गहरा लगाव था। जिसके लिए उन्होंने स्वतः प्रयत्न किए और छोटे-छोटे उपन्यास लिखने की शुरुआत की। वे अपनी रूचि के अनुसार छोटे-छोटे उपन्यास पढ़ा करते थे। पढ़ने के लिए उन्होंने एक पुस्तक के थोक व्यापारी के यहां पर नौकरी करना प्रारंभ कर दिया क्योंकि घर की दयनीय स्थिति इतनी खराब थी कि वे पुस्तक खरीद कर नहीं पढ़ सकते थे। जिससे वे अपना पूरा दिन पुस्तक पढ़ने के अपने इस शौक को पूरा करते रहे।

प्रेमचंद जी बहुत ही सरल और सहज स्वभाव तथा दयालु प्रवृत्त के भी थे। दूसरों की मदद के लिए वे सदा तत्पर रहते थे। वे ईश्वर के प्रति अपार श्रद्धा रखते थे। घर की तंगी को दूर करने के लिए सबसे प्रारंभ में एक वकील के यहां ₹५ मासिक वेतन पर नौकरी की। १९०० में मुंशी प्रेमचंद को बहराइच के सरकारी जिला स्कूल में सहायक शिक्षक के पद पर कार्य करने का अवसर मिला। जिसमें उन्हें महीने के ₹२० वेतन के रूप में मिलते थे। उन्होंने वेतन के संबंध में लिखा था कि ''मासिक वेतन पूर्णमासी का चांद है, जो एक दिन दिखाई देता है और घटते-घटते लुप्त हो जाता है।'' धीरे-धीरे उन्होंने खुद को हर विषय में पारंगत किया। जिसका फायदा उन्हें आगे जाकर एक

अच्छी नौकरी के रूप में मिला। वे एक मिशनरी विद्यालय के प्रधानाचार्य के रूप में नियुक्त किए गए। तरह-तरह का संघर्ष उन्होंने हंसते-हंसते झेला।

उनका लेखन हिंदी साहित्य की एक ऐसी विरासत है जिसके बिना हिंदी के विकास का अध्ययन अधूरा होगा। वे एक संवेदनशील लेखक, सचेत नागरिक, कुशल वक्ता, संपादक तथा बहुमुखी प्रतिभा संपन्न व्यक्ति थे। प्रेमचंद ने उपन्यास, कहानी, नाटक, समीक्षा, लेख संपादकीय, संस्मरण आदि अनेक विधाओं में साहित्य की सृष्टि की। वे उपन्यास सम्राट थे। उन्होंने कुल १५ उपन्यास, ३०० से कुछ अधिक कहानियां, ३ नाटक, १० अनुवाद बाल पुस्तकें तथा हजारों पृष्ठों के लेख, संपादकीय, भाषण की रचना की।

प्रेमचंद ने १९०१ में उपन्यास लिखाना शुरू किया। उर्दू में वे नवाब नाम से लिखते थे। स्वतंत्रता संग्राम के दिनों लिखी गई उनकी कहानी 'सोजे वतन' १९१० में जप्त की गई। उसके बाद अंग्रेजों के उत्पीड़न के कारण वे प्रेमचंद नाम से लिखने लगे। १९२३ में उन्होंने सरस्वती प्रेस की स्थापना की। १९३० में हंस का प्रकाशन शुरू किया। उन्होंने मर्यादा, जागरण तथा माधुरी जैसी प्रतिष्ठित पत्रिकाओं का संपादन किया।

महात्मा गांधी के आवाहन पर उन्होंने १९२१ मैं अपनी नौकरी छोड़ दी। नौकरी छोड़ने के बाद कुछ दिनों तक उन्होंने 'मर्यादा' नामक पत्रिका का संपादन कार्य किया। उसके ६साल बाद तक माधुरी नामक पत्रिका में संपादक का कार्य बड़ी बखूबी से निभाया। १९३० से १९३२ के बीच उन्होंने अपने खुद की मासिक पत्रिका 'हंस' एवं साप्ताहिक पत्रिका 'जागरण' निकालना शुरू किया। कुछ दिनों तक उन्होंने मुंबई में फिल्म के लिए कथा भी लिखी। उनकी कहानी पर बनी फिल्म का नाम मजबूर था। यह १९३४ में प्रदर्शित हुई थी।

१९३६ में गोदान, १९१८ में कर्मभूमि, १९२५ में निर्मला, १९३६ में गबन, १९१९ में सेवा सदन तथा प्रेमचंद की अमर कहानियों में नमक का दरोगा, दो बैलों की कथा, पूस की रात, कफन, ईदगाह, पंच परमेश्वर इत्यादि बहुत प्रसिद्ध हुए। प्रेमचंद की अंतिम कहानी कफन थी तथा अंतिम उपन्यास मंगलसूत्र था जो कि अधूरा था। जिसे उनके पुत्र अमृत राय ने पूरा किया।

प्रेमचंद जी के साहित्य में ठेठ भारत के दर्शन, गांधीवाद, लोकोक्ति तथा मुहावरों का प्रयोग दिखाई देता है। अधिकांश कहानियों के पात्रों के नाम भी कहानी के उस समय के अनुरूप ही रखे गए हैं। प्रेमचंद जी की कहानियां सामाजिक जीवन को चरितार्थ करती नजर आती हैं। उनके साहित्य में भारतीय ग्रामीण जीवन के दर्शन होते हैं।

बीसवीं शताब्दी के परिवार में जब हिंदी में काम करने की तकनीकी सुविधाएं नहीं थी फिर भी इतना काम करने वाला लेखक उनके सिवा कोई दूसरा नहीं हुआ। शरद चंद्र चट्टोपाध्याय ने उन्हें 'उपन्यास सम्राट' की संज्ञा दी थी। ८ अक्टूबर १९३६ को जलोदर रोग से उनका देहांत हो गया।

डॉक्टर सर्वपल्ली राधाकृष्णन

''आदर्श शिक्षक वह है, जो स्वयं और मानव भविष्य के प्रति विश्वास एवं श्रृद्धा के साथ समर्पित है। केवल उत्सर्ग की भावना रखने वाले व्यक्ति ही देश को महान बना सकते है। सच्चे अर्थो में महान वे नहीं होते जिनके पास अपार धन, यश या बल हो, महान वे होते हैं जो अपनी आत्मा के आदेशों के अनुसार चलते है और चाहे कोई भी कीमत चुकानी पड़े समझौता नहीं करते। ऐसे महान लोग केवल अपने लिये नहीं पूरी मानवता के लिए जीते है और सभी के लिये प्रेरणा की ज्योति बन जाते है।''

यह विचार किसी साधारण व्यक्ति के नहीं, बल्कि ५ सितम्बर सन् १८८८ ई. को भारत वर्ष की पवित्र भूमि आंध्रप्रदेश के चित्तूर जिले के तिरूतनी गाँव में जन्में महान दार्शनिक शिक्षा शास्त्री, श्रेष्ठ चिंतक, आदर्श शिक्षक एवं विलक्षण, प्रज्ञावान डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन के हैं। उनके पिता का नाम वीर स्वामी था। आर्थिक परिस्थिति उनकी भले ही विषम थी किंतु धर्म व शिक्षा के प्रति उनकी आस्था असाधारण थी। वे शिक्षण कार्य के साथ ही साथ पुरोहितायी भी किया करते थे।

बालक राधाकृष्णन की प्रारम्भिक शिक्षा लूथरन मिथुन हाईस्कूल में संपन्न हुई। उनकी अधिकांश शिक्षा ईसाई मिशनरी द्वारा संचालित कॉलेज में हुई। जो हिंदू धर्म पर रूढ़ीवादी होने का आरोप लगाते थे। हिंदू धर्म में अगाध, प्रेम रखने वाले

राधाकृष्णन ने सन् १९०९ में दर्शन शास्त्र से एम.ए. की पदवी प्राप्त की और इसी वर्ष उनकी नियुक्ति मद्रास के प्रेसिडेंसी कॉलेज में तर्कशास्त्र के सहायक प्रोफेसर के पद पर हुई।

उन्होंने ''द एथिक्स ऑफ वेदातं'' नामक शोध निबंध लिखा। इस निबंध में उन्होंने हिंदू धर्म व वेदातं की बृहद व्याख्या की। जिसे पढ़कर प्रोफेसर ''हांग'' ने कहा था! ''इसमें दर्शन शास्त्र के न केवल मूल सिद्धांतों का विवेचन किया है, बल्कि इसे आत्मसात भी कर लिया गया है। जटिल और गंभीर मुद्दों को सहज ढंग से आत्मसात तथा अभिव्यक्ति करने की अद्भुत क्षमता, अंग्रजी भाषा में प्रवाह से अपनी बात रखने के कारण यह निबंध अद्भुत सफलता प्राप्त कर सका है।

इसके साथ ही उदय हुआ, एक महान दार्शनिक लेखक का जिन्होंने भागवत गीता का अनुवाद, ब्रम्हसूत्र जीवन का दृष्टिकोण, प्रेरणा, पुरूष इत्यादि पुस्तके लिखीं। डॉ. राधाकृष्णन की प्रतिभा से प्रभावित होकर मैसूर के विश्व विख्यात वैज्ञानिक श्री विश्वेश्वरैया ने उन्हें अपने यहाँ बुलाकर महाराजा कॉलेज मैसूर में दर्शनशास्त्र के प्राध्यापक पद पर सन् १९१८ में नियुक्त किया। इस पद पर वे सन् १९२१ तक रहे। डॉ. राधाकृष्णन कहते थे, कि ''मुँह में सोने का चम्मच लेकर पैदा हो या लकड़ी का, परंतु अधिक महत्वपूर्ण यह है कि तुम खाते क्या हो?''

ब्राम्हण खानदान के होते हुये भी उन्होंने ''अब्राम्हण आंदोलन'' में भाग लिया और हमेशा पाखण्ड का विरोध करते रहे। वे रविन्द्रनाथ टैगोर से काफी प्रभावित थे।

उन्होंने ''दि फिलॉसफी ऑफ रविन्द्रनाथ लिखा।'' सन् १९२१ में राष्ट्रसंघ ने डॉ.राधाकृष्णन को अपनी अन्तर्राष्ट्रीय बौद्धिक सहयोग सम्मान का सदस्य मनोनीत किया। डॉ राधाकृष्णन ने ''भारतीय दर्शन का इतिहास ''दो खण्डों में लिखा जो सन् १९२३ एवं सन् १९२७ में इग्लैंड में प्रकाशित हुआ। सन् १९२६ में विश्व विद्यालय ने उन्हें ब्रिटिश साम्राज्य के विश्व

विद्यालय के सम्मेलन में अपना प्रतिनिधि बनाकर भेजा। इसी वर्ष आंध्र विश्वविद्यालय ने उन्हें डाक्टरेट की उपाधि से सम्मानित किया। सन् १९२६ में ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय का निमंत्रण स्वीकार कर एक वर्ष तक वहाँ के प्राफेसर के पद पर कार्यरत रहे।

सन् १९३० में ब्रिटिश सरकार ने डॉ. राधाकृष्णन को ''सर'' की उपाधि प्रदान की। मई १९३१ में वे आंध्र विश्वविद्यालय के उपकुलपति नियुक्त हुये। सन् १९३६ में पुनः उनकी नियुक्ति ऑक्सफोर्ड में प्रोफेसर ऑफ इस्टर्न एण्ड एथिक्स के रूप में हुई। सन् १९५२ में वे भारत के निर्विरोध उपराष्ट्रपति चुने गये। ११ मई १९६२ तक उन्होंने इस पद को सुशोभित किया। १२ मई १९६२ का दिन विशेष रूप से दर्शन शास्त्रियों के लिये आनन्द दायक था। वास्तव में इस दिन भारत के फिलासफी का सम्मान हुआ। उसी दिन विश्व प्रसिद्ध डॉ. राधाकृष्णन ने ३१ तोपो की सलामी के बीच राष्ट्रपति पद की शपथ ली। वे इस पद पर सन् १९६७ तक रहे। भारत के सर्वोच्च पद पर रहते हुये भी उन्होंने शिक्षक समुदाय के गौरव एवं अस्मिता को नया आयाम दिया। जिसके कारण उनका जन्मदिन ''शिक्षक दिवस'' के रूप में आज भी मनाया जाता है। वे भारत के ऐसे महान विभूति थे, जिन्हें 'भारत रत्न' 'मास्टर ऑफ विज्डम,' पुरला मेरितेगोएट प्लावेंट (जर्मनी) तथा इग्लैंड की साम्राज्ञी द्वारा प्रदत्त आर्डर ऑफ मेरिट जैसे राष्ट्रीय एवं अन्तराष्ट्रीय सम्मान से सम्मानित किये गये। देश के सर्वोच्च पद पर रहते हुये भी उन्होंने सादगी का त्याग नहीं किया। उनकी जीवनी शिक्षक समाज के साथ ही साथ सम्पूर्ण भारत के प्रत्येक नागरिकों के लिये प्रेरणा का स्त्रोत बनी रहेगी। ८७ वर्ष की आयु में यह देश का महान सपूत १६ अप्रैल १९७५ को सदा-सदा के लिये भारत माता की गोद में चिरनिंद्रा में लीन हो गया।

बच्चों के प्यारे चाचा नेहरू

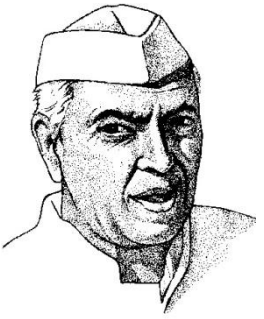

स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधानमंत्री बच्चों के चहेते जवाहरलाल नेहरू का जन्म १४ नवंबर १८८९ को उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद अब प्रयागराज में हुआ। उनके पिताजी मोतीलाल नेहरू जाने-माने वकील थे। उनकी माता का नाम स्वरूपनानी नेहरू था। रईस परिवार में पैदा होने के कारण सुख-सुविधा की कमी नहीं थी बचपन से ही वे आजादी के दीवाने थे। बाल्यकाल में उनके पिताजी मोतीलाल नेहरू ने एक तोता पिंजरे में पाल रखा था। जिसकी जिम्मेदारी उन्होंने मालिक को दे रखी थी एक दिन जवाहरलाल नेहरू जब स्कूल से घर में आए तो तोता उन्हें देखकर जोर-जोर से बोलने लगा। उसे देखकर जवाहरलाल ने पिंजरे से तोते को आजाद कर दिया। तोता एक पेड़ पर बैठकर स्नेह भरी नजरों से देख रहा था। इसे देखकर माली उन पर गुस्सा हो गया और कहने लगा, 'मालिक को मैं क्या जवाब दूंगा?' इस पर जवाहरलाल ने कहा जब सारा देश आजाद होना चाहता है तब तोता भी तो चाहता है कि आजादी सभी को मिले। बाल्यावस्था से ही वे आजादी का महत्व समझते थे उन्होंने अपनी स्कूली शिक्षा, हैरों से और कॉलेज की शिक्षा त्रिनिटी कॉलेज लंदन से पूरी की इसके बाद उन्होंने अपनी लॉ की डिग्री कैंब्रिज विश्वविद्यालय से पूरी की थी। नेहरू जी का परिवार उनकी पढ़ाई को बेहद गंभीरता से लेता था और उच्च शिक्षा पर जोर देता

था। कहा जाता है कि जवाहरलाल नेहरू एवं उनके पिताजी के कपड़े पेरिस से धोकर आते थे।

जब वे इंग्लैंड के हैरो स्कूल में पढ़ाई करते थे, एक दिन सुबह अपने जूतों पर पॉलिश कर रहे थे कि अचानक उनके पिताजी मोतीलाल नेहरु वहां पहुंचे। जवाहरलाल को जूता पॉलिश करते देख उन्हें अच्छा नहीं लगा। उन्होंने तत्काल नेहरू से कहा क्या यह काम तुम नौकरों से नहीं करा सकते? जवाहरलाल ने उत्तर दिया ''जो काम मैं खुद कर सकता हूं उसे नौकरों से क्यों कराऊँ'' नेहरू जी का मानना था कि छोटे-छोटे कामों से ही व्यक्ति आत्मनिर्भर होता है इससे उनके आत्मनिर्भरता का गुण प्रदर्शित होता है।

१९१२ ई.में वे बेरिस्टर बन कर भारत लौटे और वकालत शुरू की। १९१६ में उनकी शादी कमला नेहरू से हुई। १९१७ में वे होमरूल लीग में शामिल हो गए। राजनीति में उनकी असली दीक्षा दो साल बाद १९१९ में हुई। जब वे महात्मा गांधी के संपर्क में आए। उस समय महात्मा गांधी ने रॉलेट अधिनियम के खिलाफ एक अभियान शुरू किया था। नेहरू महात्मा गांधी के सक्रिय लेकिन शांतिपूर्ण 'सविनय अवज्ञा' आंदोलन के प्रति खास आकर्षित हुए। जलियांवाला बाग नरसंहार के बाद उन्होंने अंग्रेजों से लड़ाई करने की प्रतिज्ञा ली। महात्मा गांधी के उपदेशों का अनुकरण करते हुए उन्होंने अपने परिवार को भी ढाल लिया। उन्होंने एक महान नारा दिया 'आराम हराम' है।

१९२० में उत्तर प्रदेश के प्रतापगढ़ जिले में पहले किसान आयोजन उन्होंने किया।१९२३ में वे अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के महासचिव बने। उन्होंने १९२६ में इडली स्विट्जरलैंड, इंग्लैंड, बेल्जियम जर्मनी का दौरा किया गया। १९२६ में मद्रास कांग्रेस में कांग्रेस को आजादी के लक्ष्य के लिए प्रतिबद्ध करने में नेहरू की एक महत्वपूर्ण भूमिका थी। १९२९ में वे भारतीय राष्ट्रीय सम्मेलन के लाहौर सत्र के अध्यक्ष चुने गए। जिसका

मुख्य लक्ष्य देश के लिए पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त करना था। उन्हें १९३०-३५ के दौरान नमक सत्याग्रह एवं कांग्रेस के अन्य आंदोलनों के कारण कई बार जेल जाना पड़ा। कांग्रेस के अध्यक्ष पद के लिए वे १९३६ और १९३७ में चुने गए थे उन्हें १९४२ में 'भारत छोड़ो' आंदोलन के दौरान गिरफ्तार भी किया गया और १९४५ में छोड़ दिया गया। १९४७ में भारत और पाकिस्तान की आजादी के समय उन्होंने अंग्रेजी सरकार के साथ हुई वार्ताओं में महत्वपूर्ण भागीदारी की। जवाहरलाल नेहरू १९४७ में स्वतंत्र भारत के पहले प्रधानमंत्री बने। उन्होंने आधुनिक भारत के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। उन्होंने पंचवर्षीय योजना का गठन किया विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विकास को प्रोत्साहित किया और तीन बार लगातार पंचवर्षीय योजनाओं का शुभारंभ किया। उनकी नीतियों के कारण देश में कृषि और उद्योग का एक नया युग शुरू हुआ। १९५५ में उन्हें देश के सर्वोच्च सम्मान 'भारत रत्न' से सम्मानित किया गया।

जवाहरलाल नेहरू अपने पड़ोसी देश पाकिस्तान और चीन के साथ भारत के संबंधों में सुधार नहीं कर पाए। पाकिस्तान के साथ एक समझौते तक पहुंचने में कश्मीर मुद्दा और चीन के साथ मित्रता में सीमा विवाद रास्ते के पत्थर साबित। हुए नेहरू ने चीन की तरफ हाथ भी बढ़ाया। लेकिन १९६२ में चीन ने धोखे से आक्रमण कर दिया नेहरू के लिए यह एक बड़ा झटका था, और शायद उनकी मौत भी इसी कारण हुई। २७ मई १९६४ को जवाहरलाल नेहरू को दिल की दौरा पड़ा जिसमें उनकी मृत्यु हो गई। उन्हें बच्चों से बहुत लगाव था। बच्चे उन्हें चाचा नेहरू कहकर संबोधित करते थे इसी प्रेम के कारण उनका जन्मदिन 'बाल दिवस' के रूप में मनाया जाता है। वे डिस्कवरी ऑफ इण्डिया के लेखक के रूप में विख्यात रहे।

दलितों के मसीहा डॉ. बाबासाहेब आम्बेडकर

"शिक्षा वह शेरनी का दूध है, जो पिएगा वह दहाड़ेगा" शिक्षा समाज के परिवर्तन के लिए एक प्रभावी हथियार है। शिक्षा लोगों को उनके कर्तव्यों और अधिकारों के साथ शिक्षित करती है। प्राथमिक शिक्षा सभी शिक्षा की नींव है, इसलिए यह शिक्षा बहुत उच्च गुणवत्ता की होनी चाहिए। यह किसी साधारण व्यक्ति के विचार नहीं बल्कि २० वीं शताब्दी से श्रेष्ठ चितंक, ओजस्वी लेखक, यशस्वी वक्ता, स्वतंत्रता भारत के प्रथम कानून मंत्री तथा भारतीय संविधान के प्रमुख निर्माणकर्ता एवं दलितों के मसीहा डॉ. भीमराव आंबेडकर के थे।

डॉ. भीमराव आंबेडकर का जन्म १४ अप्रैल १८९१ में मध्य प्रदेश के महू नामक शहर में हुआ था। उनके पिता श्री रामजी सेना में सूबेदार मेजर थे। उनकी माता का नाम श्रीमती भीमाबाई था। वे धार्मिक प्रवृती की घरेलू महिला थी। वे अपने माता-पिता की चौदहवीं संतान थे। उनका अवतरण तब हुआ जब धरती पर जाति-पाति, छूत-अछूत, ऊँच-नीच आदि विभिन्न सामाजिक कुरीतियों का साम्राज्य चरम सीमा पर था। देश मनुवादी व्यवस्था के बीच समाज में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र के रूप में विभाजित था। अछूतों को तालाबों, कुँओं, मंदिरों, शैक्षणिक संस्थाओं आदि सभी जगहों पर जाने से एकदम वंचित कर दिया गया था।

अत्यंत कुटिल व मानवता को शर्मसार कर देने वाली परिस्थितियों के बीच दलितों, पिछडों और पीड़ितों के मुक्तिदाता एवं मसीहा के रूप में डॉ. आंबेडकर अवतरित हुए। डॉ. आंबेडकर बचपन से ही कुशाग्र बुद्धि के थे। अपमान तिरस्कार तथा घृणा के कड़वे घूंट पीते हुए उन्होनें एम.ए., पी.एच.डी., एम.एस.सी., डी.एस. सी., एल.एल.डी डिलीट जैसी शिक्षा क्षेत्र में उत्तम उपाधियाँ प्राप्त करके अदम्य साहस, लगन, निष्ठा, धैर्य और शिक्षा के प्रति गहनतम लगाव का परिचय दिया। उन्होंने विधि, अर्थशास्त्र और राजनीतिक विज्ञान में शोध कार्य भी किए थे। डॉ. अम्बेडकर देश के निर्धन और वंचित समाज को प्रगति करने का जो सुनहरा सूत्र दिया था, उसकी पहली इकाई शिक्षा ही थी। इससे अंदाज लगाया जा सकता है कि वे गतिशील समाज के लिए शिक्षा को कितना महत्व देते थे? उनका त्रिसूत्र था शिक्षा, संगठन और संघर्ष। वे आह्वान करते थे, शिक्षित करो, संगठित करो और संघर्ष करो तथा पढ़ो और पढ़ाओ। कमजोर वर्गों के छात्रों को छात्रावासों, रात्रि स्कूलों, ग्रंथालयों तथा शैक्षणिक गतिविधियों के माध्यम से अपने दलित वर्ग शिक्षा समाज के जरिये अध्ययन करने और साथ ही साथ आय अर्जित करने के लिए उनको सक्षम बनाया।

२७ दिसंबर १९२७ को आम्बेडकर ने एक सभा में न्यायालयों, पुलिस सेवा और व्यापार के दरवाजों को दलितों के लिए खोलने की मांग की। इस तरह १९३० में उन्होंने ३० हजार दलितों को साथ लेकर नासिक के कालाराम मंदिर में प्रवेश के लिए सत्याग्रह किया। १९३५ में आंबेडकर ने 'लेबर पार्टी' का गठन किया, जिसने उस समय के चुनाव में विजय हासिल की। १९४२ में हुए वायसराय की कार्यकारिणी के सदस्य नियुक्त किए गए। सन् १९४५ में उन्होंने 'पीपुल्स एजुकेशन सोसायटी' के जरिए मुंबई में सिद्धार्थ महाविद्यालय, औरंगाबाद में मिलिंद महाविद्यालय की स्थापना की। बौद्धिक वैज्ञानिक प्रतिष्ठा, भारतीय

संस्कृति वाले बौद्ध धर्म की १४ अक्टूबर १९५६ को ५ लाख लोगों के साथ नागपुर में दीक्षा ली तथा भारत में बौद्ध धर्म को पुनः स्थापित कर अंतिम ग्रंथ 'द बुद्ध एंड हिज धम्मा' के द्वारा निरंतर बुद्ध का मार्ग प्रशस्त किया। बेजबान, शोषित और अशिक्षित लोगों को
जगाने के लिए सन् १९२७ से १९५६ के दौरान मूकनायक, बहिष्कृत भारत, समता, जनता और प्रबुद्ध भारत नामक पाँच साप्ताहिक एवं पाक्षिक पत्र पत्रिकाओं का संपादन किया। भारत में रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया की स्थापना डॉ. आंबेडकर द्वारा लिखित शोधग्रंथ रूपये की समस्या उसका उदभव तथा उपाय और भारतीय चलन व बैंकिंग का इतिहास ग्रंथों और हिल्टन यंग कमीशन के समक्ष उनकी साक्ष्य के आधार पर १९३५ में हुई।

वायसराय की कौंसिल में श्रममंत्री की हैसियत से श्रम कल्याण के लिए श्रमिकों की १२ घंटे से घटाकर ८ घटें कार्य समय, समान कार्य, समान वेतन, प्रसूति अवकाश, संवैधानिक अवकाश, कर्मचारी राज्य बीमा योजना, स्वास्थ्य सुरक्षा कर्मचारी भविष्य निधि अधिनियम १९५२ में बनाया। डॉ. आम्बेडकर ने समता, समानता, बंधुता एवं मान्यता आधारित भारतीय संविधान को २ वर्ष ११ महीने और १७ दिन के कठिन परिश्रम से तैयार कर २६ नवंबर १९४९ को तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद को सौंपकर देश के समस्त नागरिकों को राष्ट्रीय एकता अखडंता और व्यक्ति की गरिमा की जीवन पद्धति से भारतीय संस्कृति को अभिभूत किया। यह संविधान विश्व का सर्वश्रेष्ठ लिखित संविधान माना जाता है। दलितों, श्रमिकों, किसानों और महिलाओं के अधिकारों का समर्थन करते हुए देश का महामानव ६ दिसंबर १९५६ को सदा-सदा के लिए चिरनिद्रा में भारत माता की गोद में सो गया। इस दिन को बौद्ध धर्म के अनुयायी ''महापरि निर्वाण दिवस'' के रूप में मनाते हैं। १९९० में उन्हें भारत के सर्वोच्च सम्मान 'भारत रत्न' से नवाजा गया।

महान स्वतंत्रता सेनानी नेताजी सुभाष चंद्र बोस

अब हमारी आजादी निश्चित है, परन्तु आजादी बलिदान मांगती है ''तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आजादी दूंगा'' कहकर नौजवानों में प्राण फूंकने वाला यह वाक्य किसी साधारण व्यक्ति के नहीं थे। यह वाक्य २३ जनवरी १८९७ को उड़ीसा के कटक के बंगाली परिवार में जन्म लिए नेताजी सुभाषचंद्र बोस के थे। बोस के पिता का नाम जानकीनाथ बोस था। जो पेशे से एक वकील थे। उनकी माता का नाम प्रभावती था।

सुभाषचंद्र बोस का बाल्यकाल बड़ी संपन्नता में व्यतीत हुआ। वे बचपन से ही विलक्षण प्रतिभा के धनी थे। उन्होंने कभी किसी वस्तु का अभाव नहीं देखा। पिताजी अपने पेशे में व्यस्त रहते थे। माता बड़ा परिवार होने के कारण पालन पोषण में लगी रहती थीं, जिसके कारण माता-पिता के वात्सल्य का अभाव जरूर था। जिसकी पूर्ति उन्हें उनके बड़े भाई शरत्चंद्र द्वारा होती थी। वे उनके बहुत करीब थे। अपनी सारी बातें वे अपने बड़े भाई से

साझा करते थे। उनकी प्रारंभिक शिक्षा कटक के ही स्थानीय मिशनरी स्कूल में हुई।

नेताजी एक मेघावी छात्र थे। अंग्रेज अध्यापक बोस जी के अंक देखकर हैरान रह जाते थे। बोस जी के कक्षा में सबसे अधिक अंक लाने पर जब छात्रवृत्ति अंग्रेज बालक को मिली तो उन्होंने मिशनरी स्कूल छोड़ दिया। उसी समय अरविंद ने बोस से कहा, ''हममें से प्रत्येक भारतीय को डायनमो बनना चाहिए। जिससे कि हममें से यदि एक भी खड़ा हो जाए तो हमारे आस-पास हजारों व्यक्ति प्रकाशवान हो जाए।'' अरविंद के शब्द बोस के मस्तिष्क में गूंजते रहते थे।

उन्होंने १९०२ में प्रोस्टेंट यूरोपियन स्कूल में प्रवेश लिया। सारे विषयों में उनके अच्छे अंक आते थे। लेकिन वे बंगाली में कुछ कमजोर थे। बाकी विषयों की अपेक्षा बंगाली में उन्हें कम अंक मिलते थे।

एक दिन अध्यापक ने बंगाली में निबंध लिखने के लिए कहा। उसमें सुभाषचंद्र बोस को अन्य बालकों से कम अंक मिले। अध्यापक ने जब उनकी कमियों का जिक्र कक्षा में किया तो सभी छात्र मजाक उड़ाने लगे। एक विद्यार्थी ने सुभाष चंद्र से कहा ''वैसे तो तुम बड़े देशभक्त बने फिरते हो। मगर अपनी ही भाषा पर तुम्हारी पकड़ इतनी कमजोर हौ'' ये बात सुभाषचंद्र को बहुत बुरी लगी। उन्होंने दिन-रात एक करके बंगाली सीखना प्रारंभ किया। अगली बार जब परीक्षा हुई तब उन्हें कक्षा में पहला स्थान मिला, साथ ही साथ बंगाली भाषा के पेपर में कक्षा में सर्वोत्तम अंक प्राप्त हुआ।

यूरोपियन स्कूल के बाद उनकी शिक्षा कलकत्ता के प्रेजिडेंसी कॉलेज और स्कॉटिश चर्च कॉलेज में हुई। बाद में प्रशासनिक सेवा के लिए उनके माता-पिता ने बोस को इंग्लैंड के केब्रिज विश्वविद्यालय भेज दिया। अंग्रेजी शासन काल में भारतीयों के लिए सिविल सर्विस में जाना बहुत कठिन था। किंतु उन्होंने सिविल सर्विस की परीक्षा में चौथा स्थान प्राप्त किया।

अंग्रेज नहीं चाहते थे कि कोई भारतीय सिविल सर्विस परीक्षा उत्तीर्ण करके उच्च पद पर बैठे। जब वे सिविल सर्विस की परीक्षा उत्तीर्ण करके मौखिक परीक्षा के लिए गए, तब अंग्रेज परीक्षक उन्हें देखकर हंसने लगे और उन्होंने आपस में निर्णय लिया कि इनसे ऐसे प्रश्न पूँछे जाए जिसका उत्तर वे बता न पाए। ऊपर चलते पंखे को देखकर परीक्षक ने पूछा इस पंखे में कितनी पत्तियां है? पंखा तेज चल रहा था, जिसके कारण यह बता पाना बहुत कठिन था। सुभाष चंद्र ने साहस का परिचय देते हुए पंखे की बटन को बंद कर दिया और गिनकर बता दिया कि पंखे में कितनी पत्तियां है यह देखकर अंग्रेज परीक्षकों का सर शर्म से झुक गया और उन्हें उत्तीर्ण घोषित करना पड़ा।

१९२१ में भारत में बढ़ती राजनीतिक गतिविधियों से बोस ने सिविल सर्विस छोड़कर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के साथ जुड़ना पसंद किया। महात्मा गांधी उदारवादी थे। परंतु सुभाष चंद्र बोस क्रांतिकारी नेता होने के बावजूद दोनों के मकसद एक ही थे अर्थात देश को स्वतंत्रता दिलाना। १९३८ में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का अध्यक्ष निर्वाचित होने के बाद उन्होंने राष्ट्रीय योजना का गठन किया।

सुभाषचंद्र बोस राष्ट्रीय सभा के एक महत्वपूर्ण नेता थे। उन्होंने दो बार राष्ट्रीय कांग्रेस का अध्यक्ष पद भार उठाया था। वे १९३३ से ३६ तक यूरोप में रहे। उनका मानना था कि स्वतंत्रता हासिल करने के लिए राजनीतिक गतिविधियों के साथ-साथ कूटनीतिक सैन्य सहयोग होना जरूरी है। १९४२ में उनका विवाह ऑस्ट्रेलिया के एमिली शेंकल से हिंदू रीतिरिवाजों के अनुसार हुआ। दूसरा विश्वयुद्ध छिड़ते ही बोस ने अपने विचारों को फैलाना शुरू कर दिया। परन्तु ब्रिटिश सरकार ने उन्हें नजर बंद कर लिया। बोस वहां से भाग निकलने में सफल रहे एवं अफगानिस्तान और सोवियत संघ से होते हुए जर्मनी जा पहुंचे। १९४३ में जर्मनी से जापान, और जापान से सिंगापुर पहुंचकर उन्होंने ''आजाद हिंद फौज'' की कमान अपने हाथ में ली।

उन्होंने आजाद हिंद फौज का पुनर्गठन किया और महिलाओं के लिए रानी झांसी रेजीमेंट का भी गठन किया। जिसकी कैप्टन लक्ष्मी सहगल बनी। सुभाषचंद्र बोस ४ जुलाई १९४४ को आजाद हिंद फौज के साथ वर्मा पहुंचे। वहीं पर उन्होंने अपना प्रसिद्ध नारा ''तुम मुझे खून दो मैं तुम्हें आजादी दूंगा'' दिया था। पश्चिम बंगाल विधानसभा के सामने उनकी मूर्ति खड़ी की गई है। बताया जाता है कि १८ अगस्त १९४५ को टोकियों (जापान) जाते समय ताइवान के पास नेताजी का एक हवाई दुर्घटना में निधन हो गया। लेकिन उनका शव नहीं पाया गया। नेताजी की मौत के कारणों पर आज भी विवाद बना हुआ है।

सादगी एवं ईमानदारी की प्रतिमूर्ति
लाल बहादुर शास्त्री

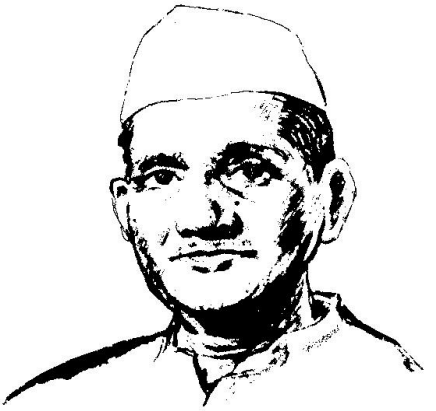

लाल बहादुर शास्त्री का जन्म २ अक्टूबर १९०४ में उत्तर प्रदेश के मुगलसराय में हुआ था। उनके पिताजी का नाम शारदा प्रसाद वर्मा तथा माता का नाम राम दुलारी देवी था। लाल बहादुर शास्त्री के पिता स्कूल के अध्यापक थे और बाद में वे इलाहाबाद के आयकर विभाग में कार्यरत हो गए। गरीब होने के बावजूद भी शारदा प्रसाद अपनी ईमानदारी के लिए जाने जाते थे। लाल बहादुर शास्त्री एक वर्ष के थे तभी उनके पिता का देहांत हो गया। राम दुलारी देवी ने लाल बहादुर और अपनी दो पुत्रों का पालन-पोषण अपने पिता के घर पर किया।लाल बहादुर अपने नाना के घर रहते हुए प्राथमिक कक्षा तक की पढ़ाई करने के बाद आगे की शिक्षा के लिए वाराणसी चले गए। वहां वे कई मील की दूरी नंगे पांव चलकर विद्यालय जाते थे। यहां तक कि भीषण गर्मी में जब सड़क अत्यधिक गर्म हुआ करती थी तब भी उन्हें ऐसे ही जाना पड़ता था। नदी पार करने के लिए पैसे ना होने पर वे स्कूल भी तैरकर जाते थे। वे मात्र सत्रह वर्ष की

आयु में महात्मा गांधी के असहयोग आंदोलन से जुड़ गए। आंदोलन के दौरान उनको गिरफ्तार भी किया गया पर कम उम्र के कारण छोड़ दिया गया। जेल से छूटने के बाद लाल बहादुर शास्त्री ने काशी विद्यापीठ में दर्शनशास्त्र की पढ़ाई की।वर्ष १९२६ में लाल बहादुर ने शास्त्री की उपाधि प्राप्त कर ली। इसके बाद सर्वेंट ऑफ द पीपुल सोसायटी से जुड़ गए। जिसकी शुरुआत १९२१ में लाला लाजपत राय द्वारा की गई थी। इस सोसाइटी का प्रमुख उद्देश्य उन युवकों को प्रशिक्षित करना था जो अपना जीवन देश की सेवा में समर्पित करने के लिए तैयार थे। लोक सेवा समाज के सदस्य के रूप में उन्होंने मेरठ मुजफ्फरनगर जिले के दलितों की सेवा की। इसी दौरान १९२७ में शास्त्री जी का विवाह ललिता देवी के साथ हुआ। वे सच्ची जीवनसाथी साबित हुई। वे हमेशा शास्त्री जी की सेवा कार्यो में सहयोग करती रही।

लाल बहादुर शास्त्री की माता ने उनका नाम लाल बहादुर इसलिए दे रखा था कि वे हर कदम बहादुर बन सकें। उन्होंने विपरीत परिस्थितियों में भी हिम्मत नहीं हारी और अपने कर्तव्य पथ पर आगे बढ़ते रहे। जेल में उन्हें सूचना मिली कि उनकी पत्नी को टी.वी. हो गई है। तब भी उन्होंने हिम्मत ना हारी। उन्होंने अपनी पत्नी को ढांढस बंधाया। शास्त्री जी का जीवन दुख को सहन करते हुए बीता। संकट आने पर वे घबराते नहीं थे, बल्कि उसका धैर्य से सामना करते थे। एक बार नैनी जेल में उन्हें सूचना मिली कि उनकी पुत्री बहुत बीमार है परंतु जिलाधिकारी ने पैरोल के लिए शर्त रख दी कि शास्त्रीजी किसी आंदोलन में भाग नहीं लेंगे।सिद्धांत के पक्के शास्त्री जी ने शर्त मानने से इनकार कर दिया। आखिरकार जेल अधिकारी को

झुकना पड़ा और उन्हें पंद्रह दिन की पैरोल दे दी गई। परंतु काफी देर हो चुकी थी उनकी पुत्री अपने पिता को देखने के लिए अब जीवित ना थी।उनकी अंतिम इच्छा भी पूरी न हो पाई।

१९३० में गांधी जी ने 'सविनय अवज्ञा आंदोलन' का आह्वान किया और लाल बहादुर शास्त्री की संदूला से जुड़े और उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया।जेल में वे पश्चिम देशों के दार्शनिक, क्रांतिकारियों और समाज सुधारकों के कार्यों से परिचित हुए।

कांग्रेस ने पूर्ण आजादी की मांग की।इस जन आंदोलन के दौरान शास्त्री जी को एक साल के लिए जेल भेज दिया गया। १९४२ में गांधी जी के 'भारत छोड़ो' आंदोलन में सक्रिय रूप से उन्होंने भाग लिया। वे गिरफ्तार कर लिए गए। १९४५ में दूसरे बड़े नेताओं के साथ उन्हें भी रिहा कर दिया गया। इस प्रकार सन १९३० से १९४५ तक ब्रिटिश सरकार से निरंतर संघर्ष करते रहे शास्त्री जी ने १५ वर्षों में से ९ वर्ष जेल के सलाखों के पीछे बिताएं।

आजादी के बाद सन् १९४७ में शास्त्रीजी उत्तर प्रदेश के गृहमंत्री बने और उन्हें कांग्रेस कमेटी का सचिव नियुक्त किया गया।१९५२ में जवाहर लाल नेहरू ने लाल बहादुर शास्त्री को केंद्रीय मंत्रिमंडल में रेल्वे और परिवहन मंत्री के रूप में नियुक्त किया।रेल के तृतीय श्रेणी के डिब्बों में यात्रियों को और अधिक सुविधाएं प्रदान करने में लाल बहादुर शास्त्री के योगदान को भुलाया नहीं जा सकता। शासकीय आंध्र प्रदेश में भयानक रेल दुर्घटना से मौत हुई और अपना नैतिक दायित्व समझते हुए उन्होंने अपने पद से इस्तीफा दे दिया। सन १९६२ में भारत चीन

युद्ध के दौरान देश की आंतरिक सुरक्षा बनाए रखने में उन्होंने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

१९६६ में जवाहरलाल नेहरू के मृत्यु के बाद लाल बहादुर शास्त्री भारत के प्रधानमंत्री बने।यह एक मुश्किल समय था जब देश बड़ी चुनौतियों से जूझ रहा था।देश में खाद्य पदार्थों की कमी थी और दूसरी ओर पाकिस्तान सीमा पर समस्या खड़ी कर रहा था। १९६५ में पाकिस्तान ने भारत पर हमला कर दिया। कोमल स्वभाव वाले लाल बहादुर शास्त्री ने इस अवसर पर अपनी सूझबूझ और चातुर्यता से देश का नेतृत्व किया और किसानों को उत्साहित करने के लिए उन्होंने 'जय जवान, जय किसान' का नारा दिया। पाकिस्तान को युद्ध में हार का सामना करना पड़ा और शास्त्री जी के नेतृत्व की प्रशंसा हुई।

१९६६ में ताशकंद में लाल बहादुर शास्त्री और आयुक्त ने रूस की मध्यस्थता से संयुक्त घोषणापत्र पर हस्ताक्षर किए। संधि के तहत भारत युद्ध के दौरान कब्जा किए गए सभी प्रांतों को पाकिस्तान को लौटाने के लिए १० जनवरी १९६६ को संयुक्त घोषणापत्र पर हस्ताक्षर हुए और उसी रात को दिल का दौरा पड़ने से लालबहादुर शास्त्री का निधन हो गया।

देश ने एक महत्वपूर्ण नेता खो दिया। उन्होंने बड़ी सादगी और ईमानदारी के साथ अपना जीवन जिया और सभी देशवासियों के लिए एक प्रेरणा स्रोत बने।

क्रांतिकारी भगतसिंह

भगतसिंह का जन्म २७ सितम्बर १९०७ को लायलपुर जिले के बंगा में (अब पाकिस्तान) में हुआ था। उनका पैतृक गांव खट्कड़ कलाँ है, जो पंजाब में है। उनके पिताजी का नाम किशनसिंह और माता का नाम विद्यावती था। भगतसिंह का परिवार आर्य समाजी सिख परिवार था।

बचपन से ही वे धीर, वीर और निर्भीक थे। एक कहावत है ''पूत के पांव पालने में ही दिखाई पड़ जाते हैं'' ५ वर्ष की बाल अवस्था में ही भगतसिंह अनोखे खेल खेला करते थे। वे अपने साथियों को दो टोलियों में बांट देत थे और परस्पर एक दूसरे पर आक्रमण करके युद्ध अभ्यास किया करते थे। भगतसिंह के हर कार्य में उनके धीर, वीर और निर्भीक होने का आभास मिलाता था।

भगतसिंह का परिवार स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय रूप से जुड़ा हुआ था। उनके पिता किशनसिंह और चाचा अजीत सिंह गदर पार्टी के सदस्य थे। गदर पार्टी की स्थापना ब्रिटिश शासन को भारत से निकालने के लिए अमेरिका में हुई थी। परिवार के माहौल का युवा भगतसिंह के मस्तिष्क पर बड़ा असर पड़ा और बचपन से ही उनकी नसों में देशभक्ति की भावना कूट-कूटकर भरी हुई थी।

१९१६ में लाहौर के डी.ए.वी. विद्यालय में पढ़ते समय युवा भगतसिंह जाने-माने राजनेता जैसे लाला लाजपतराय और रासबिहारी बोस के संपर्क में आए।

१३ अप्रैल १९१९ को जलियावाला बाग हत्याकांड ने भगतसिंह के बाल मन पर बड़ा गहरा प्रभाव डाला। इस हत्याकांड के अगले ही दिन भगतसिंह जलियावाला बाग गए और उस जगह की मिट्टी को इकट्ठा कर इसे पूरी जिंदगी एक निशानी के रूप में रखा। इस हत्याकांड ने उनके अंग्रेजों को भारत से निकाल फेंकने के संकल्प को और सुदृढ़ कर दिया। उस समय उनकी उम्र मात्र १२ वर्ष की थी। उनका मन इस अमानवीय कृत्य को देखकर देश को स्वतंत्र करवाने की सोचने लगा। भगतसिंह ने चन्द्रशेखर के साथ मिलकर क्रांतिकारी संगठन तैयार किया।

१९२१ में महात्मा गांधी ने ब्रिटिश शासन के खिलाफ असहयोग आंदोलन चलाया था। भगतसिंह अपनी पढ़ाई छोड़कर आंदोलन में सक्रिय हो गए। सन १९२२ में जब महात्मा गांधी ने गोरखपुर चौरा-चौरी में हुई हिंसा के बाद असहयोग आंदोलन बंद कर दिया, तब भगतसिंह बहुत निराश हो गए। अहिंसा से उनका मन का विश्वास कमजोर होने लगा। उन्होंने आगे की पढ़ाई जारी

रखी एवं लाहौर के लाला लाजपत राय द्वारा स्थापित विद्यालय में प्रवेश लिया जहां उन्हें भगवती चरण वर्मा, सुखदेव और अन्य क्रांतिकारियों से परिचय हुआ।

भगतसिंह के माता-पिता ने चाहा कि उनकी शादी कर दी जाए, परन्तु वे अपना घर छोड़कर कानपुर चले गए। उनका कहना था कि अगर उन्होंने पराधीन भारत में शादी की तो फिर उनकी पत्नी सिर्फ उनके लिए मौत लेकर आएगी।

कानपुर में उनकी मुलाकात गणेश शंकर विद्यार्थी से हुई। जहां उन्होंने क्रांति का पहला पाठ सीखा। जब उन्हें दादी मां की बीमारी की खबर मिली तो भगतसिंह गांव लौट आए। वहीं से उन्होंने अपनी क्रांतिकारी गतिविधियां जारी रखी।

फरवरी १९२८ में इंग्लैंड के साइमन कमीशन नामक एक आयोग भारत दौरे पर आया। लाहौर में साइमन कमीशन के विरोध में नारेबारी करते समय लाला लाजपतराय पर लाठी चार्ज किया गया और वे बुरी तरह घायल हो गए और कुछ दिनों बाद उन्होंने दम तोड़ दिया। जिसका बदला भगतसिंह ने सहायक अधीक्षक सैंडर्स को स्कांट समझ कर मौत के घाट उतार कर लिया और सजा से बचने के लिए लाहौर छोड़कर चले गए।

८ अप्रैल १९२९ को भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त ने केन्द्रीय विधानसभा सत्र के दौरान विधानसभा भवन में बम फेंका। बम से किसी को भी नुकसान नहीं पहुंचा। भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त ने घटनास्थल से भागने के बजाय जानबूझकर गिरफ्तारी दी। ७ अक्टूबर १९३१ को भगतसिंह, सुखदेव, राजगुरू को विशेष न्यायालय द्वारा फांसी की सजा सुनाई गई परन्तु दिन

और समय निश्चित नहीं किया गया और लाहौर जेल भेज दिया गया।

भगतसिंह सिर्फ एक क्रांतिकारी ही नहीं थे बल्कि एक लेखक भी थे। उस दौर में छपने वाले कई अखबारों में उनके लेख छपते थे। भगतसिंह की फांसी की सजा २३ मार्च १९३१ निश्चित की गई। फांसी के एक दिन पहले उनके मित्र प्राणलाल मेहता ने उन्हें लेनिन की जीवन पुस्तिका पढ़ने के लिए दी।

वे मौत के खौफ से कोसों दूर अपनी जेल की कोठरी में लेनिन की जीवनी पढ़ते रहे। वे पढ़ने में इतना लीन हो गए कि उन्हें इस बात का भान भी नहीं रहा कि आज उन्हें फांसी लगने वाली है। दुनिया में बुद्धिजीवी तो बहुत हुए हैं पर क्या इतिहास में अध्ययनशीलता का ऐसा कोई उदाहरण मिलता है कि मौत सिर पर खड़ी हो आप पुस्तक पढ़ने में मगन हो? थोड़ी देर में कोठरी का दरवाजा खुला और जेल अधिकारियों ने कहा, ''सरदार जी, फांसी लगाने का समय आ गया है।'' उस समय पुस्तक का एक पृष्ठ पढ़ना शेष था। उन्होंने अधिकारियों से कहा, जरा ठहरो, एक क्रांतिकारी दूसरे क्रांतिकारी से मिल रहा है। जब उनसे उनकी अंतिम इच्छा पूछी गई तो उन्होंने कहा, हां मेरी अंतिम इच्छा है मैं दुबार इस देश में पैदा होना चाहता हूं ताकि इसकी सेवा कर सकूं और हंसते-हंसते फांसी के फंदे को चूम कर सदा-सदा के लिए क्रांतिकारी वीर भगतसिंह भारतवासियों को अलविदा कर गए।

डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम

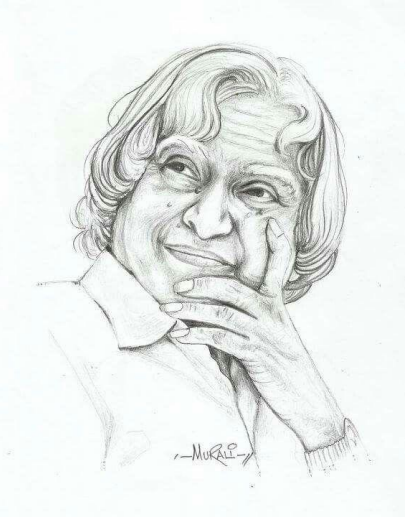

भारत के मिसाइल मैन कहलाने वाले प्रसिद्ध वैज्ञानिक महान लेखक, शिक्षक, पूर्व राष्ट्रपति डॉक्टर ए.पी.जे. अब्दुल कलाम का जन्म १५ अक्टूबर १९३१ को दक्षिण भारतीय राज्य तमिलनाडु के रामेश्वरम में हुआ। उनका पूरा नाम अब्दुल पकीर जैनुल्लादीन अब्दुल कलाम था। उनके पिताजी जैनुल्लादीन एक ईमानदार नाविक तथा माता असीम्मा ईश्वर में विश्वास रखने वाली एक गृहिणी थी। घर की आर्थिक स्थिति ठीक न होने के कारण वे समाचार पत्र बेचा करते थे। गणित उनका प्रिय विषय था। गणित के शिक्षक जिन बच्चों के पास ट्यूशन के पैसे नहीं होते थे, उन्हें वे प्रातः ४ बजे पढ़ाया करते थे। कलाम प्रातः उठते और ट्यूशन पढ़ने के बाद नमाज पढ़कर रामेश्वर रेल स्टेशन पर समाचार पत्र बेचते, इसके बाद विद्यालय पढ़ने जाते थे। डॉक्टर ए.पी.जे. अब्दुल कलाम ने अपनी प्रारंभिक शिक्षा रामेश्वरम प्राथमिक स्कूल में पूरी की थी।

१९५४ में वे तिरूचिरापल्ली के सेटंजोसेफ कालेज से भौतिक विषय में स्नातक की डिग्री प्राप्त की। १९५५ में वे चेन्नई चले गए और मद्रास इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी में एयरोस्पेस इंजीनियरिंग का अध्ययन किया। एयरोस्पेस टेक्नोलॉजी में आने का श्रेय उनके पांचवी के शिक्षक सुब्रह्मण्यम को जाता है। जब उन्होंने कक्षा पाँचवीं के छात्रों को समुद्र तट पर इसलिए ले गए, ताकि उन्हें दिखा सके पक्षी आकाश में कैसे उड़ते हैं? यह देखकर कलाम का जीवन बदल गया और हमेशा वे अपनी आकांक्षा को आसमान के समान ऊँचा देखने लगे और एयरोस्पेस में प्रवेश लिया। उनका सपना एक लड़ाकू पायलट बनना था, परंतु परीक्षा में उन्हें नौवां स्थान प्राप्त हुआ, जबकि आईएएफ ने केवल ८ क्रमांक तक के लोगों को ही लिया इसलिए उसमें वे सफल नहीं रहे।

१९६० में स्नातक स्तर की पढ़ाई पूरी करने के बाद वे रक्षा अनुसंधान और विकास संगठन के वैमानिक विकास स्थान में एक वैज्ञानिक के रूप में शामिल हो गए। अपने कैरियर की शुरुआत में उन्होंने भारतीय सेना के लिए एक छोटा सा हेलीकॉप्टर बनाया था। १९६२ में कलाम इसरो पहुँचे। इन्हीं के प्रोजेक्ट डायरेक्टर रहते भारत में अपना पहला स्वदेशी उपग्रह प्रक्षेपण यान यस. यस. बी. ३ बनाया गया।

१९६५ मे वे रक्षा अनुसंधान और विकास संगठन की पहली विस्तारणीय निस्तारण रॉकेट परियोजना पर स्वतंत्र रूप से काम किया था। कार्यक्रम का विस्तार १९६९ में हुआ था, परंतु सरकारी मंजूरी मिलने के बाद उसमें और भी इंजीनियरों को शामिल किया गया। जुलाई १९८० में उनकी टीम पृथ्वी की कक्षा

के पास रोहिणी उपग्रह को स्थापित करने में सफल रही। १९८२ में डॉ. कलाम को डीआरडीएल (डिफेंस रिसर्च डेवलपमेंट लैबोरेट्री) का डायरेक्टर बनाया गया। १९८२ में अन्ना यूनिवर्सिटी द्वारा उन्हें डॉक्टर की उपाधि प्रदान की गई। उन्होंने सबसे पहले सितंबर १९८५ में त्रिशूल, फरवरी १९८८ में पृथ्वी, मई १९८९ में अग्नि का सफल परीक्षण किया। उन्होंने ब्रह्मोस प्राइवेट लिमिटेड की स्थापना की।

सन् १९८१ के गणतंत्र दिवस के शुभ अवसर पर डॉ. कलाम को पद्मभूषण से सम्मानित किया गया। १९९० में पद्मा विभूषण और १९९७ में भारत के सर्वोच्च नागरिक सम्मान ''भारत रत्न" से नवाजा गया।

२७ जुलाई २०१५ को भारतीय प्रबंधन संस्थान शिलॉग में अध्यापन कार्य के दौरान उन्हें दिल का दौरा पड़ा। जिसके बाद करोड़ों लोगों के प्रिय और चहेते डॉ. अब्दूल कलाम सदा-सदा के लिए भारत माता की गोद में चिर निद्रा में लीन हो गए।

कल्पना चावला

भारतीय मूल की पहली अंतरिक्ष यात्री होने का गौरव हासिल करने वाली कल्पना चावला का जन्म हरियाणा के करनाल जिले में १ जुलाई १९६१ को हुआ था। उनके पिताजी का नाम बनारसी चावला तथा माता का नाम संयोगिता चावला था। कल्पना हर बच्चों की तरह चाँद पर मुग्ध थी। उन्हें इंग्लिश, हिंदी, भूगोल आदि विषय पसंद थे, पर विज्ञान सबसे ज्यादा पसंद लगता था।

जिस उम्र में लड़कियाँ गुड़िया खेलती हैं, उस उम्र में वे साइकिल से रपेट मारा करती थीं। स्वतः के बाल वे स्वतः ही काटतीं थी। वे बचपन से ही टॉमबॉय की तरह रहती थी। मेकअप से वे कोशो दूर थी और फैशन की ओर उनका ध्यान कभी नहीं जाता था। स्त्री किये हुए कपड़े उन्होंने कभी नहीं पहने। अपनी बड़ी बहन की शादी में उन्होंने एक ही जोड़ी कपड़े तीनो दिन पहनने की जिद की क्योंकि ज्यादा कपड़े खरीदना उनके हिसाब से फिजूल खर्ची था।

जिस उम्र में लड़कियाँ कहानी की किताब पढ़ने में मशगूल रहती हैं, उस उम्र में वे कराटे सिखा करती थीं। उन्हें लोग प्यार

से मोंटू कहते थे। वे काफी मेहनती थीं। उन्हें आकाश में उड़ने की प्रचंड आकांक्षा थी। जैसे-जैसे वे बड़ी हुई वैसे-वैसे उनमें हवाई जहाज के प्रति सनक बढ़ती गई। करनाल में फ्लाइंग क्लब था और वे सिर पर मंडराते वायुयानों को घंटो निहारा करती थी। सारे नक्षत्र ग्रह, तारे इत्यादि विषय पर उन्होंने अनेक अभ्यासू प्रबंध लिखा था।

टैगोर स्कूल से प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त करने के बाद चावला ने १७ वर्ष की आयु में वैज्ञानिक अभियंत्रण (इंजीनियरिंग पाठ्यक्रम) के लिए पंजाब इंजीनियरिंग कॉलेज चंडीगढ़ में प्रवेश लिया। कल्पना के इस निर्णय से घरवाले काफी परेशान थे। उस समय कर्मठ घर की लड़की अकेले दूसरे शहर में जाकर शिक्षा ग्रहण करे, ऐसे पद्धति नहीं थी। लेकिन कल्पना अपने पथ पर अडिग रही। अंत में माता संयोगिता ने साथ देने का निश्चय किया। वे चंडीगढ़ भले ही आ गई, परंतु वहाँ भी समस्या खड़ी हो गई। उसके प्राचार्य ने उसे एयरोनॉटिक्स शाखा खतरनाक होने के कारण मेकनिकल व इलेक्ट्रिकल शाखा में प्रवेश लेने के लिए कहा परंतु कल्पना ने कहा, मुझे एयरोनॉटिक्स ही दीजिए वर्ना मुझे यहाँ नहीं पढ़ना है। मैं घर चली जाऊँगी, तब कहीं जाकर उसे एयरोनॉटिक्स में प्रवेश मिल सका। वे उस इंजीनियरिंग कॉलेज में प्रवेश लेने वाली पंजाब विद्यापीठ की पहली लड़की थी। बी. ई. करने के बाद उन्होंने आगे की शिक्षा अमेरिका जाकर करने का निश्चय किया। एक बार फिर उनके माता-पिता पर समस्याओं का पहाड़ टूट पड़ा । एक अविवाहित लड़की को शिक्षा के लिए सात समंदर के पार भेजने के लिए कोई राजी न था। किसी ने उसे यही शादी करने तथा किसी ने अमेरिका के लड़के

से शादी करने की राय दी। परंतु उसने किसी की एक न सुनी। अंत में जब यह देखा गया कि वह अपना आग्रह छोड नही रही हैं, तब उन्हें भाई के साथ अमेरिका भेजा गया। १९८२ में वे अमेरिका गयी।

उनकी व्यवस्था करके उनका भाई वापस आ गया। परंतु अकेले रहने पर भी उन्होने अपना ध्येय निश्चिय रखा। १९८४ ई. में टैक्सास विद्यापीठ से एयरोस्पेस इंजीनियरिंग की डिग्री प्राप्त की १९८८ में इसी विषय पर कोलोरडो विद्यापीठ में डॉक्टरेट की डिग्री प्राप्त की। उसी वर्ष एम. सी. ए. टी में वैज्ञानिक पद पर काम शुरु किया। १९९८ में वैमानिक होने का प्रमाण पत्र प्राप्त किया। १९९४ में कल्पना अंतरिक्ष उडडयन में प्रशिक्षण लेने के लिए नासा में शामिल हो गई। वे सन् १९९७ में १९ नवंबर को अंतरिक्ष में जाने वाली कोलंबिया की उड़ान के लिए चालक दल की सदस्य चुनी गई। उन्होंने अन्तरिक्ष में ३७२ घंटे बिताये और अरबों मील की यात्रा तय कर पृथ्वी की २५२ परिक्रमाएं पूरी की इस प्रकार अंतरिक्ष में यात्रा करने वाली वे पहली भारतीय महिला बनी। अंतरिक्ष यात्रा के दौरान उन्होने स्पेसवॉक किया। कल्पना में तीव्र इच्छा, जिद्द, व साहस का त्रिवेणी संगम उनमें था। वे पूर्ण तरह से शाकाहारी थीं तथा उनके पति जीन पियरे हैरिसन उनका संपूर्ण सहयोग दिया करते थे। जिसके कारण उन्होने विमान उड़ान, स्क्युबा ड्राइविंग, हायकिंग इत्यादि साहसी खेल सीखा। १६ जनवरी २००३ को जाने वाली कोलंबिया की दूसरी उड़ान के लिए उसका चयन किया गया। उन्होने तब भारतीय ध्वज अपने साथ ले जाना तय किया तथा अपनी पूर्व गणित अध्यापिका निर्मला नम्बूदिरिपाद से संपर्क स्थापित किया। उन्होंने रेशम का

ध्वज दिया जो एक छात्र को आशीर्वाद देते अध्यापक की दो हाथों को चित्रित करता था। इस पर एक शीर्षक भी लिखा था ''राह दिखाते हुए''। कल्पना ने सचमुच राह दिखाई। प्रत्येक वर्ष करनाल में अपने स्कूल टैगोर बाल निकेतन के दो छात्रों को नासा भ्रमण के लिए प्रेरित करती। जहाँ उन्हें घुमाती और उन्हें दृढ़संकल्प साहस तथा दूरदर्शिता की शिक्षा देती थी।

अंतरिक्ष विज्ञान की उपलब्धियों से राष्ट्र का विकास संभव है। यह आज बच्चा-बच्चा जान गया है और आज के संदर्भ में उसे चंदा मामा शायद दूर प्रतीत नहीं होते। अंतरिक्ष शटल से उन्होंने चंडीगढ़ इजीनियरिंग कॉलेज के बच्चों को भेजे आखरी ईमेल में कल्पना ने लिखा था, ''सपनों से लेकर कामयाबी तक का रास्ता बिल्कुल मौजूद है। बस आपके पास उसे तलाशने का दृष्टिकोण हो, उस पर पहुँचने का हौसला हो और उस पर चलने की दृढ़ता हो तो सफलता अवश्य मिलती ही है। कल्पना के ऊँचे सपनों और अतुलनीय साहस ने उन्हें अंतरिक्ष तक पहुँचाया। परंतु यह भाग्य की विडम्बना ही थी, कि १६ जनवरी २००३ से शुरु अंतरिक्ष अभियान में कोलंबिया यान लगातार १६ दिन अंतरिक्ष में रहने के उपरांत सभी प्रयोग सफल होने के बावजूद धरती पर पहुँचने के १६ मिनट पहले ही १ फरवरी २००६ को राख की ढेर बन गया और भारत तथा अमरीका का ही नहीं बल्कि पृथ्वी पर रहने वाले सभी मानव का सपना चकनाचूर हो गया। कल्पना चावला ने भारतवर्ष का नाम गौरवान्वित किया। वे भारत के प्रत्येक स्त्री-पुरुष तथा बच्चों की प्रेरणा का स्त्रोत बन कर नक्षत्र में सदैव चमकती रहेंगी।

व्यक्तित्व दर्पण

नाम- राजकुमार यादव 'सरस'

पिताजी- श्री रामलखन यादव

शिक्षा- एम. ए.,डी.एड. बी. एड.(शिक्षा विशारद)

जन्मतिथि- ५ मार्च १९६४ (मुंबई)

प्रकाशित रचनाएं- विभिन्न समाचार पत्रों एवं सप्ताहिक व मासिक पत्रिकाओं में प्रकाशित शैक्षणिक लेख एवं कक्षा पांचवी से आठवीं तक व्यवसाय पुस्तक तथा मार्गदर्शक पुस्तक का आशीष प्रकाशन दादर (मुंबई) द्वारा महाराष्ट्र में प्रकाशन

सम्मान एवं पुरस्कार- ठाणे महानगरपालिका द्वारा 'आदर्श शिक्षक महापौर पुरस्कार' फरीदाबाद हरियाणा द्वारा 'शिक्षा भूषण' सम्मान, समन्वय संकल्प निबंध प्रतियोगिता 'प्रथम क्रमांक', सुमन मोटल्स निबंध प्रतियोगिता 'प्रथम क्रमांक', महात्मा ज्योतिबा फुले राष्ट्रीय फेलोशिप अवार्ड (दिल्ली), शिक्षक गौरव रत्न एवं राष्ट्रीय एकात्मता प्रतिभा रत्न व राज्य स्तरीय शिक्षक रत्न पुरस्कार, विद्यासागर, विद्यवाचस्पति व भारतीय भाषा रत्न सम्मान (उज्जैन) मध्य प्रदेश, काव्यकुमुद, कलम-कलाधर व राष्ट्रीय प्रतिभा सम्मान (राजस्थान), भारत गौरव सम्मान पाधरी (महाराष्ट्र), लोकमान्य तिलक सम्मान (महाराष्ट्र), शहीद मंगल पांडे सम्मान (महाराष्ट्र), भारतीय पत्रकार संघ द्वारा आदर्श शिक्षक राष्ट्रीय पुरस्कार (नासिक), राष्ट्रीय शिक्षक संचेतना उज्जैन द्वारा 'भाषा गौरव सम्मान' , श्री नवमान साहित्य अलीगढ़ (उत्तर प्रदेश) द्वारा 'विचार सृजन सम्मान' विशिष्ट शिरोमणि रत्न भीलवाड़ (राजस्थान), साहित्य मंडल श्री नाथ द्वारा 'साहित्य सौरभ सम्मान' (राजस्थान) तथा अनेकों सम्मान एवं पुरस्कार से सम्मानित ।

ईमेल- rajkumaryadav9869@gmail.com

मोबाइल- ९८६६६७८८४२, ९०८२२६२४३

पत्ता- कमरा नं. १ हिल निवास, टेम्बीपाडा, गांवदेवी रोड, भाण्डुप (प.) मुंबई ४०००७८

पं.क्र. (04/21/05/207665/19)
अन्तरा शब्दशक्ति
www.antrashabdshakti.com

१५, नेहरु चौक, मेन रोड वारासिवनी, जि. बालाघाट (म.प्र.) पिन ४८१३३१,
संपर्क- ९४२४७६५२५९, अणुडाक: antrashabdshakti@gmail.com

978-93-5372-081-0

मूल्य 120/-

शब्द सुगंध